योगविद्या

वर्ष 3 अंक 6
जुलाई 2014
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

50 years

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत
विश्व योग सम्मेलन 2013 विशेषांक

हरि: ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2014

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 62 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर फोटो : विश्व योग सम्मेलन 2013 में स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती एवं स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

अन्दर के रंगीन फोटो : 1: गुरु पादुका; 2: श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती; 3 & 5: श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती; 4: श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी सत्यसंगानन्द; 6: पादुका दर्शन; 7: गंगा दर्शन; 8: स्वामी निरंजनानन्द

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

गुरु की महिमा

गुरु आनन्द, ज्ञान और करुणा के सागर होते हैं। उनकी मृदु मुस्कान सर्वत्र प्रकाश, आनन्द, ज्ञान और शांति बिखेरती है। वे दु:ख-संतप्त मानवता के लिए वरदान हैं। उनका प्रत्येक वाक्य उपनिषदों के मंत्र समान है।

गुरु शिष्य की जीवन-नौका के माँझी हैं। उन्हें आध्यात्मिक पथ तथा उसके अवरोधों और खतरों का पूरा ज्ञान है। इसलिए वे अपने शिष्यों का सही मार्गदर्शन करने और सही समय पर खतरों की चेतावनी देने में पूर्णतया सक्षम हैं। उनकी उपस्थिति मात्र से शिष्यों की सभी परेशानियाँ, कठिनाइयाँ एवं सांसारिक दु:ख-दर्द दूर हो जाते हैं तथा उन्हें आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ने की नवीन प्रेरणा, स्फूर्ति एवं ऊर्जा मिलती है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर – 811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद – 121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 3 अंक 6 · जुलाई 2014
(प्रकाशन का 52 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 गुरु पूर्णिमा संदेश
6 शिष्यत्व ही वास्तविक गुरुत्व है
12 नाम-स्मरण की महिमा
18 गुरु तत्त्व
22 गुरु ज्ञान गंगा
26 गुरु परम्परा को नमन
36 आध्यात्मिक सद्गुरु
41 क्रीड़ा मनोवृत्तियों की
42 शिष्यत्व ही योग का प्रारम्भ है
48 गुरु की महिमा
49 प्रवृत्ति-मार्ग में गुरु का मार्गदर्शन
52 शिष्य की प्रार्थना
54 कल्पतरु की छाँव में

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

गुरु पूर्णिमा संदेश

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

गुरु पूर्णिमा केवल व्यास-पूजा नहीं है, सच्चे साधक के लिए यह एक विशेष संदेश लेकर आती है। यह महान् तिथि उसे एक गुह्यतम रहस्य का स्मरण कराती है। यह रहस्य है गुरु-भक्ति और गुरु-सेवा के उस अतीन्द्रिय, आंतरिक पथ का, जो भगवत्-साक्षात्कार का सबसे सुगम और सरल मार्ग है। गुरु-सेवा ही वह राज-मार्ग है जिस पर उत्तांक, उपमन्यु, आरुणी, पद्मपाद और मिलारेपा जैसे शिष्यों ने चलकर अमरता को प्राप्त किया था।

जहाँ इस दिन परम्परानिष्ठ संन्यासी ब्रह्म-सूत्रों का विधिवत् अध्ययन शुरू करते हैं, वहीं एक सच्चे जिज्ञासु के लिए, जो *'ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोर्पदम्, मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोर्कृपा'* की भावना से ओत-प्रोत होकर गुरु-भक्ति के राज-मार्ग पर दृढ़ता से कदम रखता है, ब्रह्म-सूत्र के गूढ़तम रहस्य स्वतः उद्घाटित हो जाते हैं!

आज ही गुरु-तत्त्व का सच्चा अर्थ जानिये और इसका वास्तविक महत्त्व पहचानिये। गुरु के माध्यम से ईश्वर को प्राप्त करने का दिव्य रहस्य केवल भारतवर्ष की पावन धरती पर उद्घाटित और विकसित हुआ; वह धरती जिसने श्वेतकेतु,

उद्दालक, सत्यकाम और एकलव्य जैसे गुरु-निष्ठ शूरवीरों को जन्म दिया। समस्त राष्ट्रों में भारतवर्ष ही सबसे धन्य है, समस्त भारतीय निधियों में हमारी भव्य संस्कृति ही सबसे बहुमूल्य है, हमारी समस्त सांस्कृतिक धरोहरों में प्रबुद्ध ऋषि-मुनियों द्वारा प्रतिपादित अध्यात्म विद्या ही सबसे उत्कृष्ट थाती है और हमारे समस्त आध्यात्मिक रत्नों में सबसे बहुमूल्य मणि है – गुरु का सिद्धान्त! गुरु-शिष्य सम्बन्ध की उदात्त भारतीय विचारधारा एक ऐसा अद्वितीय आदर्श प्रस्तुत करती है जो आपको दुनिया में और कहीं नहीं मिलेगा।

जिस प्रकार कीर्तन-साधना कलियुग की विशेष साधना निर्धारित की गयी है, उसी प्रकार, शंका और अहंकार से ग्रस्त इस युग के लिए जो उपयुक्त योग है, वह गुरु-भक्ति योग ही है। इस अद्भुत योग की शक्ति आश्चर्यजनक और प्रभाव अमोघ है। सचमुच गुरु-भक्ति की महिमा वर्णनातीत है। इस युग का यह सर्वोत्कृष्ट योग, ईश्वर को जीते-जागते, चलते-फिरते रूप में आपके सामने ले आता है! साधक का सबसे बड़ा शत्रु उसका अपना कठोर राजसिक अहंकार ही होता है। इस अहंकार के नाश के लिए गुरु-भक्ति योग से बढ़कर कोई साधना नहीं। जो साधक अपने आप को गुरु-भक्ति की भावना से संतृप्त कर लेता है, उसके सामने अविद्या और अहंकार पूर्णतया तेजहीन एवं असमर्थ हो जाते हैं।

इस योग को अपनाने के लिए केवल तीन योग्यताएँ अनिवार्य हैं – निष्कपटता, श्रद्धा और आज्ञाकारिता। अपने लक्ष्य और उसे प्राप्त करने की साधना के प्रति ईमानदार और निष्कपट बनिये। बेमन और निरुत्साह प्रयासों से काम नहीं चलेगा। उसके पश्चात् उस व्यक्ति में पूर्ण श्रद्धा रखिये, जिसे आपने गुरु के रूप में स्वीकार किया है। शंका की छाया तक को अपने पास मत फटकने दीजिये। गुरु के प्रति श्रद्धावान् होने के बाद यह जान लीजिये कि वे जो भी आज्ञा देते हैं, वह आपके भले के लिए ही है। इसलिए उनकी आज्ञाओं का अक्षरश: पालन कीजिये।

गुरु की उपासना ही परमानन्द का मार्ग प्रशस्त करती है। इसलिए मन, कर्म और वचन से गुरु की उपासना और आराधना कीजिये। गुरु की आराधना का सर्वोत्तम उपाय क्या है? गुरु की स्तुति या सम्मान मात्र नहीं, बल्कि जिस उदात्त आदर्श को गुरु ने अपने जीवन और व्यवहार में सिद्ध किया है, उसी उज्ज्वल आदर्श और दिव्य संकल्प को चरितार्थ करने के लिए अनवरत संघर्ष करना और इस संघर्ष में अपना सर्वस्व तक न्यौछावर कर देना ही गुरु की सर्वोपरि पूजा और उपासना है।

यदि आप सच्चे दिल से इस मार्ग का अनुसरण करते हैं, तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप अपना लक्ष्य अवश्य प्राप्त करेंगे। वह साधक धन्य है जो इस योग को अपनाता है, क्योंकि उसे अन्य सभी योग मार्गों में भी सिद्धि मिलती है। उसे कर्म, भक्ति, ध्यान और ज्ञान के सर्वश्रेष्ठ फल स्वत: ही प्राप्त हो जाते हैं।

– गुरु पूर्णिमा 1948, ऋषिकेश

शिष्यत्व ही वास्तविक गुरुत्व है

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आज गुरु पूर्णिमा का पवित्र महोत्सव है। देश-विदेश से हजारों भक्त और साधकगण यहाँ आये हैं। सभी प्रेम और श्रद्धा के अलौकिक समुद्र में डुबकियाँ ले-लेकर अपनी सुध-बुध खोते जा रहे हैं। सबका दिमाग आज बेकाबू है – यह भक्तियोग नहीं है क्या? यह राजयोग नहीं है क्या? यह कुण्डलिनी योग नहीं है क्या? तब यह कौन-सा योग है? योग के अनेक अंगों जैसे कर्मयोग, राजयोग, हठयोग, भक्तियोग, लययोग और ज्ञानयोग आदि का जो वर्गीकरण है, वह तो हम लोग समझने और समझाने के लिए किताबों में करते हैं, मगर देखा जाए तो सब एक ही जगह पर एक साथ चलते हैं। साधना की सभी प्रक्रियाएँ एक ही चीज को सम्बोधित करती हैं।

यहाँ योग पर बात हो रही है, आसनों पर, जप और ध्यान पर बात हो रही है, रामायण पर बात हो रही है, श्रीमद्भागवत पर बात हो रही है। लोगों का दिमाग एकदम बेकाबू है, केवल हृदय खुला हुआ है। ऐसा लगता है कि सब लोग अपने दिमाग को घर के अन्दर ताले में बन्द करके आ गये हैं। केवल हृदय पसारा हुआ है। अगर ऐसी भावपूर्ण स्थिति कुछ दिन और चलती रहेगी, तो कितने लोगों का ध्यान तो अपने आप लग जायेगा। अब इसको कौन-सा योग कहोगे, बताओ तो?

शरीर के पीछे मन है, मन से सूक्ष्म बुद्धि है, बुद्धि से सूक्ष्म जीव है, जीव से सूक्ष्म अहंकार है और अहंकार से सूक्ष्म आत्मा है। आत्मा से भी सूक्ष्म एक शक्ति है और वह इतनी पीछे है, इतनी पीछे है कि किसी को कुछ समझ नहीं आता। उसके बारे में सुनते हैं, बोलते हैं, मगर कुछ दिखता नहीं। रामायण, गीता और श्रीमद्भागवत जैसे महान् सद्ग्रन्थों को पढ़ने के बाद कभी महात्माओं के पास बैठते-बैठते वेदान्त सुनकर सब समझ में आ जाता है कि पाँच तत्त्व, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और ब्रह्म क्या है, आत्मा क्या है, मगर जिस वक्त अनुभूति का ख्याल आता है तब सब बौद्धिक ज्ञान फेल हो जाते हैं, क्यों? इसलिए कि जिस चीज को तुम देखना चाहते हो वह चीज तुम्हारे सामने है, मगर तुम्हारे पास उसे देखने का सूक्ष्म उपकरण नहीं है। जिसे तुम पाना चाहते हो, वह कोई दूर की चीज नहीं है। कहते हैं कि दुनिया में सबसे नजदीक तुम्हारे पास जो है वह 'तुम' हो। तुम्हारे और उसके बीच में कोई दूरी है ही नहीं। मगर सवाल उठता है अनुभव करने का और इस अनुभव को साकार करने के लिए, अपने को अनुभूतिगम्य बनाने के लिए, हम लोग इस स्थूल मन को सूक्ष्म बनाते हैं, सूक्ष्म मन को अति सूक्ष्म बनाते हैं और बाद में उस अति सूक्ष्म मन को भी हटा देते हैं। उस मन के बदले एक दूसरे देखने वाले को ले आते हैं। यह बतला देता हूँ कि ज्ञान केवल मन, बुद्धि या भावना से ही नहीं होता। अगर उनको

हटा भी दोगे तो हमारे अन्दर एक और चीज है, जिसके द्वारा सारी दुनिया को देखा जा सकता है, दुनिया का काम किया जा सकता है, दुनिया के मजे लिये जा सकते हैं। जब हम उस अदृश्य शक्ति का जागरण करते हैं तो जैसे-जैसे हमारा आन्तरिक चश्मा साफ होता जाता है, वैसे-वैसे वह वस्तु हमें स्पष्ट दिखाई देने लगती है।

गुरु पूर्णिमा या शिष्य पूर्णिमा

कभी-कभी हम यह सोचते हैं कि इसका नाम गुरु पूर्णिमा के बदले शिष्य पूर्णिमा रखा जाता तो ज्यादा अच्छा रहता, क्योंकि गुरु लोगों की पूर्णिमा तो कब की हो चुकी रहती है। अगर पूर्णिमा नहीं हुई होती तो गुरु नहीं बनते। जिनका चित्त अंधकारमय है, जिनके मन में मलिनता है, जो अविद्या से ग्रस्त हैं, वे गुरु हो ही नहीं सकते – यह पक्की बात है। जिनका अन्दर-बाहर प्रकाश से परिपूर्ण है, ज्योत्स्नामय है, जिनके अन्दर आत्मज्ञान का प्रकाश चारों दिशाओं में फैला हुआ है, उसको कहते हैं गुरु। आज के पर्व को शिष्य पूर्णिमा कहा जाए तो अधिक अच्छा होगा, क्योंकि आज आपका मन कितना प्रकाशित हो रहा है। तुम्हें भले ही जीवन का अन्तिम सार तत्त्व आज दिखाई नहीं देता, फिर भी तुम्हें अपने अन्दर एक प्रकाश का अनुभव हो रहा है। अब इसको गुरु पूर्णिमा कहोगे कि शिष्य पूर्णिमा?

आज के दिन से हर-एक व्यक्ति को, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, चाहे बड़े घर का हो या छोटे घर का, हिन्दू हो या मुसलमान, सदाचारी, कामी, क्रोधी, व्यभिचारी, जो भी हो, उसे अपनी दिनचर्या से एक घण्टा एकदम अलग कर देना चाहिए। ऐसा मानो कि दिन में तेईस घण्टे होते हैं, चौबीस नहीं। इस एक घण्टे में आसन लगाओ, प्राणायाम करो और प्राणायाम के बाद श्वास में मंत्र को जपो। फिर श्वास का अनुभव पीछे सुषुम्ना में करो, ऊपर-नीचे और उसमें अपने मंत्र को जपो। उसके बाद भ्रूमध्य में मन को टिकाओ, जहाँ तुम लोग टीका लगाते हो। इसको भूलना नहीं, रोज करना।

भ्रूमध्य पर ध्यान करोगे तो एक छोटा-सा तिल जैसा बिन्दु दिखलाई पड़ेगा। इसके लिए कल्पना करने की जरूरत नहीं है, वह दिखाई देगा। जोर से आँखें बन्द नहीं करना। आराम के साथ आँखें बन्द करो। मन भागता है, भागने दो। बाहर रेडियो की, बर्तन की या चिल्लाने की आवाज आती है, आने दो। केवल अपनी सुरति को भ्रूमध्य के बिन्दु में लगाये रखो। यह बिन्दु सारी सृष्टि का, सारी माया का, सारे ड्रामे का आधार है जो बाह्य और अन्तर जगत् में चल रहा है। इस बिन्दु को पकड़ने के बाद गहरे ध्यान में चले जाओगे। एक घण्टा केवल इस आध्यात्मिक साधना के लिए दो, अन्यथा तुम्हारी वही हालत होगी जो आज यूरोप और अमेरिका की हो रही है। भारत के गौरव को भूलो नहीं।

ध्यान के अनेक उपाय हैं, केवल एक नहीं। हर एक व्यक्ति को अपने-अपने अनुसार ध्यान का रास्ता चुनना चाहिये। उसमें जो सरल उपाय है वह है मंत्र-जप। यद्यपि मंत्र का जप तुम्हें बहुत धीरे-धीरे आगे ले जायेगा, किन्तु निश्चित रूप से अपने

लक्ष्य की प्राप्ति पर पहुँचोगे। सभी को मंत्र का जप, उसका अनुष्ठान और उसकी विशेष क्रियाएँ करनी चाहिये। करते जाओगे तो बहुत तरक्की होगी।

मैं तो अभी भी तुम लोगों को ध्यान करा सकता हूँ, बहुत आगे छलांग भी लगवा सकता हूँ, मगर मुझे डर लगता है, क्योंकि तुमने तैयारी तो कुछ की नहीं है। रोज निन्यानबे के चक्कर में पड़े रहते हो। कोई साड़ी खोज रहा है, कोई चूड़ी खोज रहा है, कोई बेटी खोज रहा है, तो कोई बीबी खोज रहा है। ऐसी स्थिति में अगर तुम लोगों को आगे बढ़ायेंगे तो बावले हो जाओगे। मैं एक हाथ मारूँ तो सबको सुला सकता हूँ। आखिर गुरुजी ने मुझे कुछ दिया है, खाली मुफ्त में थोड़े ही साधु बने हैं, समझ गये न?

कोई आदमी दुनिया में किसी को एक दिन ठग सकता है, एक साल ठग सकता है, मगर पचास साल से दुनिया को क्या मैं ठग रहा हूँ, जरा सोचो तो सही। गुरुजी के पास सामर्थ्य है कि नहीं, यह पूछने के बदले यह पूछो कि चेले के पास गुरु के सामर्थ्य के आशीर्वाद को धारण करने के लिए पात्रता है या नहीं। गरम पानी डाल दूँगा तो कच्चा गिलास फूट जायेगा।

इस गुरु-पूर्णिमा के शुभ अवसर पर तुम सब लोग यहाँ आये हो। जो कुछ तुम लोगों को यहाँ मिला है, वह बहुत है। अगर इतना भी लेकर अपने घर वापस जाओगे, तो बहुत बड़ी बात होगी। 'हम सब चेले हैं और सद्गुरु केवल एक' – ऐसा सोच कर तुम लोग अपने घर वापस जाना और फिर अगले साल गुरु पूर्णिमा के लिए मुंगेर आना। मुंगेर में आओगे तो गंगा का स्नान, चण्डी का दर्शन और कर्णचौरा में बैठ कर तुमको उस महायोगी कर्ण की याद आयेगी, जिसे इतिहास ने बहुत उपेक्षित किया है।

समर्थ गुरु ही नहीं, समर्थ शिष्य भी चाहिए

मुझे अभी दो बातें और याद आईं। पहली बात यह कि केवल गुरु समर्थ हो, यह काफी नहीं। शिष्य को भी समर्थ होना पड़ता है। दूसरी बात, गुरु स्वयं बनता नहीं। गुरु और शिष्य, ये दोनों अलग-अलग विशेषताएँ हैं। कुछ पैदा होते ही गुरु बनकर आते हैं और कुछ पैदा होते ही चेला बनकर हैं। चेले का गुरु में प्रमोशन नहीं हो सकता। बहुत से लोग दस-बारह साल के बाद बोलते हैं, बहुत दिन हो गये चेला रहते हुए, अब गुरु में थोड़ा प्रमोशन हो जाना चाहिये। अरे भाई, गुरु चेले से बढ़कर नहीं है। शिष्य की स्वयं अपनी एक हस्ती होती है और वह शिष्य, शिष्य रहते हुए भी सारी दुनिया को मार्ग और प्रकाश दे सकता है।

हमारे गुरु स्वामी शिवानन्द जी थे और हमेशा हमने उनके सामने और पीछे यही सोचा और आज भी सोचते हैं कि हमारा शिष्यत्व ही हमारी गुरुता है। हमें गुरु बनना ही नहीं है। तुम भले ही हमें गुरु मानो, किन्तु हम तो चेला रहे हैं, हमारे लिये उतना ही ठीक। जब हम शिष्य बनते हैं तब हमारे अन्दर एक प्रकार की अहंकारहीनता का जन्म और बोध होता है तथा उस समय अपने अन्दर एक प्रकाश और ज्योत्सना का जन्म

होता है। जब शिष्य में गुरुता आती है, जब शिष्य अपने को गुरुजी मानने लगता है तो उसके अन्दर एक तरह के अहंकार का जन्म होता है। जिस समय शिष्य के अन्दर गुरुत्व का बोध आया और अहंकार का जन्म हुआ तो उस समय वे गुरु तो खैर होंगे ही नहीं, चेला भी नहीं रह पायेंगे। गुरुपन से तो गये ही, चेलापन से भी चले गये।

सच्चा शिष्यत्व

शिष्यत्व स्वयं में एक महान् गरिमामय स्थिति है। शिष्य नित्य-निरन्तर अपने अन्दर अपने गुरु की छवि को ठीक उसी प्रकार देख सकता है, जैसे सामने गुरु खड़े हों। इस सम्बन्ध में एक छोटा-सा अनुभव सुनाता हूँ। मेरे साथ कई बार ऐसा होता है कि मुझे एकान्त मिलता ही नहीं। मेरे चारों ओर ये स्वामी और भक्त लोग भूत-प्रेत-पिशाच के सदृश लगे रहते हैं। मगर कभी-कभी मुझे एकान्त मिलता है, बाथरूम में ही सही और मैं वहाँ एक-डेढ़ घण्टा बैठ जाता हूँ और थोड़ी देर के बाद मैं अपने-आप में एकदम गायब हो जाता हूँ।

यह अवस्था हमेशा नहीं, कभी-कभी होती है। ऐसे समय मेरे गुरु मेरे सामने उसी प्रकार स्पष्ट मालूम पड़ते हैं, जैसे मैं तुमको प्रत्यक्ष मालूम पड़ता हूँ और मुझे तुम लोग मालूम पड़ रहे हैं। उस समय सत्य और कल्पना में कोई फर्क नहीं रहता। यह अनुभव बहुत थोड़ी देर ही रहता है। मगर उतनी देर में मुझे सारा-का-सारा नक्शा मिल जाता है और जब मैं उस विशेष अवस्था से बाहर आता हूँ तो मुझे वह नक्शा याद रहता है। हाँ, कुछ चीजें जरूर भूल जाता हूँ। जैसे-जैसे समय बीतता है, मैं उस दृश्य को, ज्ञान को भूलता जाता हूँ, इसलिए मैं जल्दी-से कुछ आवश्यक चीजों को नोट कर लेता हूँ। नोट करते-करते बहुत चीजें भूल जाता हूँ और जिन चीजों को मैं भूल जाता हूँ उन चीजों को व्यवहार में, जीवन में गलत कर बैठता हूँ। जीवन में मैंने जितनी गलतियाँ की हैं, केवल इसलिए कि जो कुछ उस अवस्था में मुझे बोला गया था, मैं उसे भूल गया था। आज तक जीवन में जितने भी निर्णय लिये हैं, बिल्कुल ठीक-ठीक, परन्तु उसके साथ दो-चार निर्णयों में मेरी जो गलती हुई, उसका कारण यह है कि मुझे एकदम स्पष्ट नक्शा मिला, मगर बाहर आते-आते मैं सब भूल गया।

अब एक चीज सोच रहा हूँ कि नित्य-निरन्तर गुरु से सम्पर्क कैसे स्थापित किया जाए? जब अन्दर एकान्त होता है, जब मेरे अन्दर या तुम्हारे अन्दर न भाई रहता है, न बहन रहती है, न पिता रहता है, न पुत्र रहता है, न सम्पत्ति रहती है, न सुख-दुःख,

न भूत, न वर्तमान, न भविष्य, न हम, न तुम, कुछ नहीं रहता, जब केवल मैं और केवल मैं रहता हूँ, वही अवस्था उस एकान्त की है। सांख्य ने उसको असंग कहा है।

जब मन अनुभूति, विचार, स्फुरण आदि से बिल्कुल शून्य हो जाता है, ऐसे एकान्त में जिस गुरु के प्रति तुम्हारे अन्दर अनुरागात्मिका भक्ति है, वह तुरन्त आयेगा और वह जो गुरु तुम्हारे सामने साक्षात् रूप से उपस्थित होता है, वह ज्ञानी गुरु है। वह तुम्हें प्रेरणा देगा, रास्ता बतायेगा; उसको समझो और उस रास्ते पर चलो। इस मनुष्य के असमर्थ जीवन के पीछे एक बहुत बड़ा उजाला है और उसी को आत्मसात् करने के लिए आज के दिन शुभ संकल्पों को दुहराओ, कुछ दो और कुछ ग्रहण करो।

आमि यंत्र, तुमी यंत्री

अपनी बात बताऊँ। गुरु पूर्णिमा के दिन इन बातों को बतलाना जरूरी होता है, क्योंकि शिष्य लोग अपने गुरु को बढ़ा-चढ़ा कर भगवान बना देते हैं। इस तरह वे अपना तो अहित करते ही हैं, बाद में गुरु का भी अहित करते हैं, और 'आप डूबे ब्राह्मण, ले डूबे यजमान' की कहावत चरितार्थ होती है।

जहाँ तक मेरा अपना प्रश्न है, मैं कोई प्रतिभाशाली आदमी नहीं हूँ। आरामतलबी में अव्वल नम्बर, मैं सच्ची बात बोलता हूँ। मुझे तुम एक महीने तक सो जाने के लिए बोल दो, मैं बिल्कुल निश्चिन्त होकर सो सकता हूँ। मेरी फिलॉसफी भी बड़ी विचित्र है। लोगों को सिखलाता हूँ 'योग', मगर आन्तरिक रूप से समझता हूँ, क्या और क्यों करना। कुछ भी करने की जरूरत ही नहीं है, यूँ ही पड़े रहेंगे। नरक है तो ठीक, स्वर्ग है तो भी ठीक है, हम उसी में राजी हैं, क्योंकि करने और कराने वाला कोई और है। जो होना है, वह स्वत: हो ही रहा है। यदि मन एकाग्र हो जाता है, ठीक है। यदि मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि आते हैं, तो भी ठीक है; सुकर्म, दुष्कर्म, अपकर्म, कुकर्म होता है, ठीक है; जो कुछ बुरा होता है, उसका दण्ड मिलता है, वह भी ठीक है। लोग मारेंगे या राजगद्दी पर बैठा देंगे, ठीक है। यह भी ठीक, वह भी ठीक।

हमारे गुरुजी जब भी पूछते थे कि तुम जप करते हो तो हम बोलते थे, आपने जितना बताया है, उतना करते हैं, उससे आगे बिल्कुल नहीं करते हैं। मैं अभी भी पाँच माला रात को प्रतिदिन जप करता हूँ, क्योंकि गुरुजी ने बतलाया है। उन्होंने कहा इसलिए करता हूँ, वैसे अपने को तो कुछ करना नहीं है।

मुझमें ऐसी लापरवाही होते हुए भी गुरुजी मेरे निकट हैं। उन्हीं के कारण मैंने बहुत काम किया है, बहुत काम करूँगा, इतिहास के कदमों को प्रभावित करूँगा, संस्कृति के मार्ग को, स्वरूप को बदलूँगा। यह मुझे अच्छी तरह मालूम है, मगर करने वाला मैं नहीं।

यह सब मैं इसलिए बतला रहा हूँ कि तुम लोग अपनी अयोग्यता, अपने दोष, दुर्गुण, चरित्रहीनता, सदाचारहीनता, अपने व्यसन – जुआ, चोरी, व्यभिचार, नशा

आदि, जो कुछ तुम लोग करते हो, उसके बारे में सोचना छोड़ दो। एकदम ध्यान मत दो, तुम्हारे वश की चीज नहीं है। केवल सोचने और सिर मारने से क्या फायदा होगा?

बस एक चीज का ख्याल रखो और भेद जानो कि आत्मा के एकान्त में गुरुजी को कैसे देखा जाए। गुरु-शिष्य के बीच जो सम्बन्ध है, उसका मूल सूत्र अनुरागात्मिका भक्ति है। गुरु के प्रति जितना अधिक नि:स्वार्थ प्रेम-भाव होगा, सखा-भाव होगा, उतनी ही तुमको आन्तरिक जगत् में सफलता मिलेगी। हम सबको बोलते हैं कि गुरु किसी का बॉस या साहब थोड़े ही है। वह तो असली प्रेमी है, दिलदार है; उसके और मेरे बीच तो माधुर्य सम्बन्ध है, गहन प्रेम का सम्बन्ध है। उसके और मेरे बीच बुद्धि का सम्बन्ध नहीं है, वह तो हृदय का सम्बन्ध है। इस प्रकार से हम लोगों को आगे बढ़ना होगा। गुरुजी से डरने की जरूरत नहीं है। अपने प्रेमी से कभी तुम डरते हो क्या? नहीं। जो बोलना है साफ-साफ बोल दो, दो-चार चप्पल लगायेगा और क्या करेगा? मगर गुरुजी जब-जब थप्पड़ लगाते हैं, तब-तब तकदीर जाग जाती है, नसीब खुल जाता है और चेला द्रुत गति से बढ़ चलता है अपने परम लक्ष्य की ओर। यह है गुरुजी का नकद इनाम!

गुरु पूर्णिमा का यह शुभ उत्सव तुम लोगों ने मनाया है, मेरे मन में स्नेह का जो थोड़ा-बहुत भाव आया, वह तुम लोगों को बतला दिया। अंत में केवल एक बात दुहराता हूँ, तुम अपने अन्दर की सम्पूर्ण शक्ति को गुरु के रूप में जगाओ। एकान्त में वह तुम्हारे कान में कुछ बोल जायेगा स्वप्न में दिखा जाएगा और प्रत्यक्ष में कुछ कर जाएगा। अगर सुन लोगे, देख लोगे और पहचान लोगे तो तुम्हारी दुनिया की गाड़ी अपनी गति से बहुत मजे में चलेगी। जिन्दगी खुशी से बीतेगी।

– *गुरु पूर्णिमा 1981, जबलपुर*

नाम-स्मरण की महिमा

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

आज हम लोग गुरु पूर्णिमा मना रहे हैं और गुरु पूर्णिमा का मतलब यही होता है कि हम सत्य की खोज में अपने आपको समर्पित कर दें। लेकिन वह सत्य हमको मिलेगा कहाँ? वह सत्य हमको मिलेगा नाम में। अगर किसी को सत्य खोजना है, सत्य का अनुभव करना है, तो नाम में ही किया जा सकता है, क्योंकि नाम एक ऐसी शक्ति है, जो मनुष्य के मन को, मानसिकता को, व्यक्तित्व को, विचार, व्यवहार और कर्म को बदलने की क्षमता रखती है। वाल्मीकि की कहानी आप जानते हैं। उनकी मानसिकता कैसी थी, विचार और आचरण कैसा था? लेकिन परिवर्तन हुआ, और परिवर्तन कैसे हुआ? मात्र नाम से। यह बात आदिकाल से महात्माओं और मनीषियों से ही नहीं, बल्कि जब-जब भगवान ने अवतार लिया है, तब-तब उनके मुख से भी यही सुनने को मिला है कि अगर किसी प्राणी की गति होती है तो वह नाम से ही होती है।

भारतीय परम्परा में नाम को भक्ति के दृष्टिकोण से भी समझाया गया है, धार्मिक पद्धति के रूप में भी समझाया गया है, आध्यात्मिक विश्लेषण भी किया गया है और वैज्ञानिक तरीके से भी समझाया गया है। जब भक्ति भाव से हम नाम का ख्याल करते हैं, तब उस नाम में हमें निर्गुण ईश्वर का सगुण रूप दिखलायी देने लगता है। जब हम धार्मिक भाव से नाम का स्मरण करते हैं, तब उस नाम में हमें अपने इष्ट की छवि दिखलायी देती है। जब हम आध्यात्मिक भाव से नाम का स्मरण करते हैं, तब उस नाम में हमें आत्म-तत्त्व का अनुभव होता है, परमात्म तत्त्व का अनुभव होता है। और जब वैज्ञानिक रीति से विश्लेषण किया जाता है नाम का, तब उस विश्लेषण में कर्मों का रूपान्तरण होता है, व्यवहार का रूपान्तरण होता है, विचार का रूपान्तरण होता है। इसलिए नाम-स्मरण तो अपने आप में एक बहुत शक्तिशाली प्रक्रिया है।

शब्द ब्रह्म

सभी मनीषियों का यह मत रहा कि आदि काल में, सृष्टि के पूर्व केवल नाम का अस्तित्व था। जब हम और आप नहीं थे, जब यह धरती नहीं थी, जब चन्द्रमा या सूर्य नहीं था, जब यह ब्रह्माण्ड नहीं था, जब कोई भी रूप या आकार नहीं था, तब उस समय मात्र नाम का अस्तित्व था। इसी नाम को अनेक लोगों ने अपने अनुभव के अनुसार अनेक तरीकों से समझाया। कुछ लोगों ने इसको स्पन्दन की संज्ञा दी है, कुछ ने इसे ध्वनि या शब्द कहा है। भारतीय दर्शनों में भगवान के अव्यक्त रूप को शब्द ब्रह्म कहा गया है, और जब वही ईश्वर व्यक्त हो जाता है, सगुण रूप धारण करता है, तब उसका एक रूप होता है। लेकिन जब ईश्वर रूप रहित रहता है, जब

उसका न हाथ है, न पैर है, न सिर है, न कान है, तब उस समय योगियों ने कहा, ईश्वर का अव्यक्त रूप होता है शब्द ब्रह्म। इसी शब्द को किसी ने प्रणव कह दिया, किसी ने एक नाम कह दिया, लेकिन यह है हम लोगों की मूल अवस्था। शरीर की मूल अवस्था तो नहीं, किन्तु आत्मा और परमात्मा की मूल अवस्था वही है।

इसी शब्द ब्रह्म में सत्य छिपा है; इसी शब्द ब्रह्म में आनन्द छिपा है; इसी शब्द ब्रह्म में चेतन तत्त्व छिपा है। इसीलिए जब ईश्वर के गुणों की व्याख्या करते हैं, तब कहा जाता है कि वह सत्, चित् और आनन्द स्वरूप है। वही ईश्वर सत्य है, वही ईश्वर शिव है, और वही ईश्वर सुन्दर है। इसका अनुभव करना हर प्राणी के जीवन का लक्ष्य होता है। हम लोग तो व्यापार में फँसे हुए हैं। यह व्यापार होता है इन्द्रियों का, मन का, इच्छा, वासना, कामना और अन्य अनेक चीजों का। जब तक हम लोग उस व्यापार में फँसे हुए हैं, तब तक हमारा जीवन अंधकारमय है। हम अपने ही जगत् को सब कुछ मान कर, अपने आपको अपने जगत् का केन्द्र बना लेते हैं और सोचते हैं कि यही हमारी आवश्यकता है।

श्वास और नाम-स्मरण

किसी व्यक्ति ने हमारे गुरु, श्री स्वामी सत्यानन्द जी से एक प्रश्न पूछा था कि मनुष्य की आयु कितनी होती है। गुरुजी ने दूसरों से पूछा कि तुम्हीं जवाब दो। किसी ने कहा, साठ साल, किसी ने कहा अस्सी। लोग तरह-तरह के जवाब देने लगे। अन्त में गुरुजी ने कहा, 'न तो हमारी आयु साठ वर्ष की है, न अस्सी वर्ष की, न सौ वर्ष की। हमारी आयु है मात्र एक श्वास की। जब तक हम श्वास ले रहे हैं, तब तक जीवित हैं। अगर अगले क्षण हम श्वास लेना बन्द कर दें तो क्या जीवित रह पायेंगे? नहीं। इसलिए मनुष्य की जो आयु होती है, वह श्वास की आयु होती है।' अगर आप इस बात पर गौर करेंगे तो आपको खुद पता चलेगा कि आपके पास समय कितना कम है। आपको तो मालूम भी नहीं कि मैं अगली श्वास लूँगा कि नहीं। आपके पास समय बहुत कम है, एक क्षण का समय जब तक आप श्वास लें।

अगर उसी श्वास से हम नाम का स्मरण कर सकते हैं, नाम का चिन्तन-मनन कर सकते हैं, तो जीवन की उन्नति होती है। मनीषियों ने कहा है कि नाम लेने का

अभ्यास प्रत्येक श्वास के साथ इस प्रकार होना चाहिए कि अनवरत, दिन-रात, चौबीस घण्टे श्वास के साथ नाम का स्मरण रहे। कबीरदास जी कहते हैं –

ऐसा जाप जपो मन लाई, सोऽहं सोऽहं सुरता गाई।
छः सौ सहस्त्र इक्कीसौ जाप अनहद् उपजै आपै आप॥

'ऐसा जाप जपो मन लाई' – मन को जप में, नाम स्मरण में इस प्रकार से लगा दो कि श्वास ही नाम के रूप में बाहर निकले। बचपन में एक कहानी पढ़ी थी कि एक बार एक फकीर को दरबार में बुलाया गया और उससे कहा गया कि बोलो तुम जो ईश्वर का ख्याल करते हो, चिन्तन-मनन करते हो, वह केवल अपने मन से करते हो या तुम्हारा शरीर भी ईश्वर का स्मरण करता है। फकीर ने कहा कि मेरा तो रोम-रोम स्मरण करता है ईश्वर का, मैं केवल मन से स्मरण नहीं करता, मैं केवल बुद्धि से स्मरण नहीं करता, मेरा तो पूरा शरीर ही नाम-स्मरण में तल्लीन रहता है। राजा को आश्चर्य हुआ, उसने कहा कि यह कैसे सम्भव है कि शरीर भी नाम ले। फकीर ने कहा कि हाँ, मेरे शरीर का रोम-रोम भी नाम लेता है, ध्यान से सुनो। राजा ने अपना कान उस फकीर के शरीर के अलग-अलग अंगों में लगाया और जिस भी अंग में उसने अपना कान लगाया, उस अंग से ईश्वर का नाम सुना। शरीर का प्रत्येक भाग, प्रत्येक रोम ईश्वर का नाम ले रहा था।

आप कह सकते हैं कि यह तो एक सिद्धि है। सन्त, महात्मा या फकीर ही ऐसा काम कर सकते हैं। लेकिन ऐसी बात नहीं, यह सिद्धि नहीं है। जब आप बुद्धि, भावना और मन को संसार के विषयों से हटाकर ईश्वर के साथ जोड़ते हैं और ईश्वर की अनुभूति आपको सतत् होने लगती है, तब शरीर का एक-एक अंग, शरीर का प्रत्येक अणु-परमाणु ईश्वर के नाम से स्वयं को स्पन्दित होते पाता है। यही अपने आपको ईश्वर के साथ जोड़ने का चमत्कार है। लेकिन अपनी भावना बदलनी होगी, अपने विचार को बदलना होगा और यह मानना होगा कि जहाँ तक मेरा ईश्वर के साथ रिश्ता है, सम्पूर्ण विश्व में मैं ही सम्पन्न प्राणी हूँ।

आन्तरिक परिवर्तन

हम लोग तो भगवान को अपना दुःख-दर्द बतलाते हैं, लेकिन आपने अभी भजन सुना कि किसी की गोदी में फूल हैं, और किसी की गोदी में काँटे हैं, उसका कुछ तो कारण होगा ही। फूल दिया किसने, काँटा दिया किसने? फूल पाकर तो आप प्रसन्न हो गये, काँटा पाकर अप्रसन्न क्यों? हर व्यक्ति के जीवन में अनेक प्रकार के सुख-दुःख तो आते ही रहते हैं और हम चाहते हैं कि हम दुःख से मुक्ति पायें। निस्सन्देह दुःख से मुक्ति पानी चाहिए, किन्तु उस मानसिकता के साथ नहीं, जो अभी हमारी है, बल्कि उस मानसिकता के साथ जो हमें ईश्वर के कारण की जानकारी दे सके,

ऐसा क्यों हुआ। शास्त्रों में तो कहा गया है कि सबकी गति कर्मानुसार होती है और व्यक्ति यह सोचे कि कर्म के अनुसार हमको फल मिलेगा, हम अभी चिन्ता क्यों करें। अच्छा काम करेंगे, अच्छा फल मिलेगा; बुरा काम करेंगे, बुरा फल मिलेगा। जैसा काम करेंगे, वैसा फल मिलेगा, वैसी गति मिलेगी।

एक संसारी मनुष्य तो अपने ही सुख के लिए, अपनी ही स्वार्थपूर्ति के लिए कर्म करता है, प्रार्थना करता है, ईश्वर की आराधना करता है। जबकि साधक अपने सुख और स्वार्थ के लिए कर्म या पूजा-अर्चना या आराधना नहीं करता। उसके मन में हमेशा यही भाव रहता है कि जो मुझे प्राप्त हुआ है, वह मेरे अनुकूल ही है। मैंने भगवान से शक्ति माँगी, कहा कि मैं जो काम करूँ, उसमें सफल बन सकूँ, लेकिन भगवान ने मुझे शक्तिहीन बनाया ताकि मैं विनम्रता के साथ आज्ञा का पालन कर सकूँ। इस प्रकार अपनी मानसिकता को बदलना चाहिए। परिस्थिति नहीं बदलेगी, आवरण नहीं बदलेगा, कर्म नहीं बदलेगा, लेकिन अपने विचारों को बदला जा सकता है। जब आप विचारों को बदल पायेंगे, तब आप देखेंगे कि आन्तरिक परिवर्तन धीरे-धीरे शुरू होगा। वह परिवर्तन फिर आपके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को, अवस्था को, कोने को स्पर्श करेगा और उस परिवर्तन के स्पर्श के बाद आप सत्य को पहचानने लगेंगे।

इसी परिवर्तन को हम लोग योग की भाषा में कहते हैं अमावस्या से पूर्णिमा तक आना। अमावस्या के बाद चन्द्रमा धीरे-धीरे बढ़ता है और इसके विकास में पन्द्रह दिन लगते हैं। सोलहवें दिन यह अपनी पूर्ण कला में दृष्टिगोचर होता है। गुरु ने तो अपने जीवन में साधना, तपस्या और संकल्प शक्ति के बल पर परिवर्तन कर लिया। गुरु तो अपनी पूर्णिमा को प्राप्त कर चुके हैं। पूर्णिमा की प्राप्ति तो हमें करनी है। अभी हम लोग अमावस्या की अवस्था में हैं, और इस अवस्था में हमें चारों ओर अंधकार ही दिखलायी दे रहा है। अगर अंधकार में आगे बढ़ना हो तो हमें एक प्रकाश चाहिए जो हमारा मार्गदर्शन कर सके। उस प्रकाश को कहते हैं गुरु। गुरु शब्द का मतलब ही यही होता है – 'जो हमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाए।' गुरु शब्द उस व्यक्तित्व की ओर संकेत करता है जो हमारे जीवन की निशा को, हमारे जीवन के अंधकार को समाप्त करने में सहयोग दे सकता है।

धर्माचरण

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से गुरु पूर्णिमा को व्यास पूर्णिमा भी कहते हैं। महर्षि वेदव्यास ने निश्चित रूप से भारतीय संस्कृति, विचारधारा और दर्शन को एक संगठित रूप दिया है। भारतीय संस्कृति, विचारधारा और दर्शन के जितने अंग हैं, वे सब हमें प्रेरणा देते हैं, यह बतलाते हैं कि इस प्रकार का आचरण करोगे, तो तुम्हारा अभ्युदय होगा, उत्थान होगा। भारतीय विचारधारा धर्म के पक्ष को लेकर आगे बढ़ती है। धर्म जब किसी मनुष्य के जीवन का स्पर्श करता है, तब उस समय सही

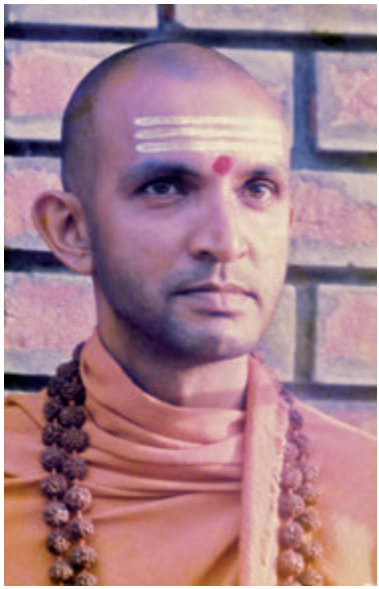

कर्म होते हैं, सही विचार होते हैं और सही व्यवहार होता है।

अगर धर्माचरण से आपको सत्कर्म की प्रेरणा नहीं मिले, तो वह धर्म नहीं है। अगर धर्माचरण से आपको सद्व्यवहार की शिक्षा नहीं मिले, तो वह धर्म नहीं है। अगर धर्माचरण से आपको सद्विचार का तरीका मालूम न पड़े, तो वह धर्म नहीं है। हमारी भारतीय संस्कृति में इन तीनों को ही धर्म का आधार बनाया गया है। जितनी भी शिक्षाएँ हमें सन्त-महात्माओं, गुरुओं, दर्शनों या प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त हुई हैं, उन सबका प्रयास रहा है कि मनुष्य अपने जीवन में धर्माचरण करे, धर्म के मार्ग पर चले। जब मनुष्य धर्म के मार्ग पर चलता है, तब उसके जीवन में अमावस्या धीरे-धीरे कम होती है। जब आपके मन में अच्छे विचार आने लगेंगे, आपका व्यवहार अच्छा होने लगेगा, आपके कर्म अच्छे होने लगेंगे तो कौन कहेगा कि आप अधर्मी हैं? आप अधर्मी तो तभी कहलायेंगे जब आपके विचार अच्छे न हों, व्यवहार ठीक न हो, कर्म ठीक न हो।

सर्वव्यापी ईश्वर का अनुभव

आदि गुरु तो ईश्वर हैं, और आदि गुरु ईश्वर सार्वकालिक हैं। उनको देश और काल की सीमा में बाँधा नहीं जा सकता। हम उन्हीं से पूरी तरह आविष्ट हैं।

जहाँ कहीं देखा प्रभु जी की माया, सबके दिल में है प्रभु जी की छाया।

चाहे बाहर हो, चाहे बुद्धि में हो, चाहे विचार में हो, चाहे भावना में हो, चाहे भोग में हो, चाहे योग में हो, सबमें ईश्वर ही है। जब यह सजगता आ जाए कि हाँ, सब में ईश्वर ही है, तब मनुष्य का उत्थान होता है। सजगता और ज्ञान के अभाव में हम लोग तो खोजते रहते हैं, लेकिन भगवान कहते हैं, *'खोजोगे तो अभी मिलूँगा, पलभर की तलाश में, मोको कहाँ तू ढूँढे बन्दे मैं तो तेरे पास में।'* जब भगवान की इस बात को याद नहीं रख सकते तो क्या याद रखोगे?

हम एक ही अनुरोध करते हैं कि यहाँ से जब निकलोगे तो केवल एक ही भाव याद रखना कि *'मोको कहाँ तू ढूँढे बन्दे मैं तो तेरे पास में।'* बस, और प्रत्येक श्वास के साथ अपने जीवन में इस भाव को धारण करना, इस विचार को धारण करना।

पहले तो यह एक मानसिक विचार का रूप लेगा, धीरे-धीरे जैसे-जैसे आपकी आस्था इस विचार में होगी, वैसे-वैसे यह पुष्पित होगा, पल्लवित होगा और आपके जीवन का आधार बनेगा।

हम लोग यहाँ गुरु पूर्णिमा का पर्व दो भावों को लेकर मनाते हैं। एक तो गुरुओं के प्रति नतमस्तक होने के लिए, जिन्होंने अपने जीवन में पूर्णिमा का अनुभव किया और पूर्णिमा के शीतल प्रकाश से पूरे समाज और मानवता को प्रसन्न किया। दूसरा कारण यह कि हम लोग यह संकल्प ले सकें कि हमारे जीवन में भी अब अमावस्या की रात को हटना चाहिए और धीरे-धीरे चन्द्र का प्रकाश आना चाहिए। जब हम षोडश कला युक्त हो जायेंगे, उस दिन हमारे जीवन में भी पूर्णिमा आ जाएगी। हम यह नहीं कह रहे हैं आप सभी आज से सन्त बन जाओ, बल्कि यह कहना चाह रहे हैं कि अपनी यात्रा का पहला कदम तो आज उठा लो, और जैसे-जैसे आगे बढ़ोगे वैसे-वैसे नये-नये आयाम आपके सामने खुलते जायेंगे, नये-नये अनुभव के क्षेत्र खुलते जायेंगे और जैसे-जैसे नये-नये अनुभव के क्षेत्र खुलेंगे, वैसे-वैसे ज्ञान की वृद्धि होगी, कर्मों में परिवर्तन होगा और आप एक सच्चे मनुष्य के रूप में समाज में आगे आकर समाज को संगठित, सन्तुलित और संयत करने में अपनी भूमिका निभा सकते हैं।

देखा जाए तो यह कलियुग ही स्वर्णयुग है, क्योंकि इस युग में हर व्यक्ति सोया हुआ हनुमान है। हर व्यक्ति के पास वह क्षमता है कि वह अपनी संकल्पशक्ति से अपने जीवन में धर्म, योग और संयम को स्थापित कर एक नये समाज का निर्माण कर सकता है। इसीलिए इसको हम स्वर्ण युग कहते हैं। जब आप अपने पौरुष से अपने जीवन में संयम, योग और धर्म को स्थापित कर पायेंगे, तब भगवान आपके भीतर प्रकट हो जायेंगे। कहते भी हैं कि कलियुग में ईश्वर को प्राप्त करने का सबसे सरल उपाय है नाम जप करो। इसी नाम के बल पर मीरा ने कृष्ण को पाया, तुलसीदास ने राम को पाया, नामदेव, तुकाराम और एकनाथ जैसे अनेक योगियों ने अपने जीवन-लक्ष्य को एक जीवन में प्राप्त किया। सुनने में आता है कि पूर्व काल में तो हजारों वर्षों तक तपस्या करनी पड़ती थी। मैं तो ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ कि प्रभु आपने तो मुझ पर उपकार किया कि मुझे कलियुग में जन्म दिया है, जहाँ पर केवल आपका नाम लेने से हमारा बेड़ा पार हो जाएगा। हजारों साल तक एक पैर पर खड़े होकर तपस्या करने की आवश्यकता नहीं है।

इसलिए गुरुपूर्णिमा का महत्त्व भी हम लोगों के लिए अधिक हो जाता है। इस दिन हम लोग प्रेरणा लें, संकल्प लें कि हम अपने जीवन में धर्म, योग और संयम को स्थापित करें। हम लोग यह प्रेरणा और संकल्प लें कि हम सुख, शान्ति, आनन्द और सत्य को अपने भीतर अनुभव करें। अपने जीवन में खोजें। जब इतना कर पायेंगे, तब आपसे सम्पन्न व्यक्ति दुनिया में कोई नहीं होगा और आपकी पूर्णिमा भी शीघ्र आ जाएगी। यही सन्देश है गुरु पूर्णिमा का।

– *गुरु पूर्णिमा 1997, गंगा दर्शन, मुंगेर*

गुरु तत्त्व

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

जीवन में गुरु के महत्त्व और उनकी आवश्यकता को अभी तक हम पूरी तरह नहीं समझ पाये हैं। गुरु की जितनी परिभाषायें उपलब्ध हैं, वे सब हमें मात्र बौद्धिक जानकारी प्रदान करती हैं। परन्तु व्यावहारिक क्षेत्र में हम गुरु के साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाते। चूँकि गुरु तत्त्व अपने को मनुष्य-शरीर में अभिव्यक्त करता है, हम उसे सामान्य आदमी की मान्यताओं और दृष्टिकोण से देखते हैं। इसीलिये हम गुरु के साथ एकात्मकता स्थापित नहीं कर पाते, क्योंकि वे हमारी तरह सोते, खाते, हँसते और बोलते हैं। हम समझते हैं कि वे हमारी तरह क्षुद्र इच्छाओं, वासनाओं तथा सीमाओं से बंधे होते हैं। यही कारण है कि हम उन्हें मात्र एक ऐसा शिक्षक और मार्गदर्शक मानते हैं, जिसे आध्यात्मिक ज्ञान तो है, परन्तु वे हम जैसे ही सामान्य व्यक्ति हैं।

वास्तव में बात ऐसी नहीं है। भौतिक शरीर में रहते हुए भी गुरु चेतना के उच्च स्तर पर रहते और कार्य करते हैं। ईश्वर गुरु-रूप में भौतिक तल पर उतरकर अपने भक्तों को रास्ता बताता है। आपका सीमित मन गुरु रूप में ईश्वर तत्त्व को ग्रहण करे, इसलिये वह गुरु-रूप में अवतरित होता है। सीमित मन द्वारा सत्य के असीमित आयाम को समझना और ग्रहण करना कठिन होता है। इसलिये गुरु शिष्य के साथ सम्बन्ध स्थापित कर इस सच्चाई को समझाने का प्रयास करते हैं। व्यष्टि और समष्टि के मिलन का माध्यम गुरु ही होते हैं।

दिव्य शक्ति को प्रत्यक्ष समझा नहीं जा सकता, क्योंकि समझने वाले व्यक्ति की चेतना सीमित होती है। इसलिये इस दिव्य शक्ति का माध्यम गुरु होते हैं। फिर गुरु के माध्यम से प्रसाद स्वरूप वह शक्ति उतरती है। जब तक शिष्य स्वयं दिव्य शक्ति को ग्रहण करने योग्य नहीं बनता, उसे गुरु के माध्यम की आवश्यकता होती है। इसीलिये अपने गुरु में हमेशा दिव्यता के दर्शन करने चाहिए। याद रखिये, आप अपने गुरु को जैसा मानते हैं वैसा ही आप बनते हैं। यदि आप उन्हें सामान्य सीमित व्यक्ति के रूप में देखते हैं, तो उनके साथ आपके सम्बन्ध भी सतही रहेंगे। इसके विपरीत यदि आप उन्हें देव स्वरूप देखेंगे, तो समझिये आप शीघ्र ही देवत्व का साक्षात्कार करने वाले हैं।

साधकों के लिए गुरु एक अनिवार्य आवश्यकता है, क्योंकि गुरु के बिना जीवन में सन्तुलन तथा समायोजन संभव नहीं होता। आपत्ति-विपत्ति में भी गुरु का मार्गदर्शन आध्यात्मिक मूल्यों को आपकी आँखों से ओझल नहीं होने देता। इसके साथ ही आप हमेशा जीवन के अन्तिम उद्देश्य को याद रखते हैं। यह जरूरी नहीं कि गुरु के साथ

आपका लम्बा वार्तालाप हो, वे आपको ढेरों आदेश और निर्देश दें। उनकी उपस्थिति ही आपको प्रेरित और पवित्र करने के लिये पर्याप्त है। आप किसी शिक्षक से योगाभ्यास सीख सकते हैं, आध्यात्मिक दिग्गजों के विद्वत्तापूर्ण प्रवचन सुन सकते हैं, परन्तु यह निश्चित मानिये कि अंत में आपको गुरु की आवश्यकता पड़ेगी ही, जो शिक्षक से बढ़कर कुछ और होते हैं। ऐसे गुरु दुर्लभ होते हैं। उन्हें पाने के लिये आपको एक श्रेष्ठ और निष्ठावान् साधक बनना होगा। केवल तभी आप गुरु की दिव्यता समझ पायेंगे। आपके निर्णय और निष्कर्ष आपकी मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति के अनुरूप होते हैं। जब तक किसी अंधे को उसकी दृष्टि वापस न मिल जाए, वह सूर्य के प्रकाश का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। ठीक इसी प्रकार जब तक आप अपने भीतर दिव्यता का अंश उत्पन्न नहीं करते, आप गुरु की दिव्यता का अनुभव नहीं कर सकते।

एक बार गुरु को पा लेने, उनसे मन्त्र दीक्षा प्राप्त कर लेने के बाद शिष्य को हर स्तर पर उनके साथ निरन्तर गहरा सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करना चाहिये। तभी वे आध्यात्मिक जीवन में आपकी सहायता और मार्गदर्शन करेंगे। हमेशा याद रखिये कि गुरु न तो सामान्य व्यक्तियों जैसे होते हैं और न ही उनके शिक्षण की विधियाँ ऐसी होती हैं जिनसे आप परिचित होते हैं। उनका लक्ष्य शिष्य में आत्मज्ञान और आत्मचेतना जाग्रत करना होता है। इसके लिये वे चाहे जो पद्धति अपनायें, आपको बुरा नहीं मानना चाहिए। जब एक बार आपने स्वयं को उनके प्रति समर्पित कर दिया, तो उन्हें जाँचने-परखने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। शिष्य का अपने सीमित मन और चेतना द्वारा गुरु को कसौटी पर कसना अनुचित है।

शंका शिष्य के जीवन को अस्तव्यस्त कर देती है। गुरु से प्रश्न अवश्य कीजिए। किन्तु वे जो कहें उस पर शंका न कीजिये, श्रद्धापूर्वक उस पर मनन-चिन्तन कीजिये। जिज्ञासा पूर्ति के लिये प्रश्न करना तथा उनके उत्तरों पर शंका करना अलग-अलग मनोवृत्तियाँ हैं। ज्ञान प्राप्ति के लिये प्रश्न करना जरूरी है, परन्तु शंका करने का मतलब गुरु द्वारा कही बात को अस्वीकार करना होता है। शंका के रूप में हमारा अपना अहं ही पनपता तथा बढ़ता रहता है।

साधक जब एक बार गुरु के प्रति समर्पित हो जाए, तो हर क्षण उसे गुरु द्वारा प्रेषित प्रेरणाओं को ग्रहण करना चाहिए। यदि वह चेतन तथा अवचेतन तलों पर सतत् उनका स्मरण करे, उनके सान्निध्य का अनुभव करे, तो उसकी ग्रहणशीलता सूक्ष्म और तीक्ष्ण हो सकती है। उसे कभी ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि चूँकि मैंने सब कुछ नहीं त्यागा है, मैं गुरु के मिशन का प्रभावशाली माध्यम नहीं बन सकता। माध्यम बनने के लिये इस बात का कोई महत्त्व नहीं होता कि आपने कितना कुछ त्यागा है अथवा आप गुरु के भौतिक सान्निध्य में कितना अधिक रहते हैं। हो सकता है आप उनसे हजारों मील दूर रहते हों और पाँच-दस वर्षों में एक बार उनका दर्शन कर पाते हों। आप भौतिक जीवन के कार्यकलापों

में भले ही पूर्ण रूप से डूबे हों, फिर भी आप उनके मिशन के प्रभावी माध्यम हो सकते हैं। बस, इतना जरूरी है कि आप जो कुछ करते हों, उसमें उनकी पवित्र उपस्थिति का अनुभव करें।

गुरु को अपना अभिन्न अंग और निकटतम मित्र समझें, जो छाया की तरह हर समय आपके साथ बना रहे। जब आप भोजन करें, वे भी आपके साथ खाते अनुभव हों, जब आप चलचित्र या दूरदर्शन देखें, आपको अनुभव हो कि वे भी आपके साथ देख रहे हैं, जब आप सोयें तो आपको ऐसा लगे कि हर क्षण आपमें उनकी उपस्थिति बनी हुई है। कभी ऐसा न सोचिये कि चूँकि वे हर क्षण आपके साथ हैं, आपका अच्छा और भला ही होना चाहिए।

अपने व्यक्तित्व को पूरी तरह व्यक्त होने दीजिये, परन्तु गुरु को थोड़े समय के लिए भी स्वयं से अलग न कीजिये। गुरु आपके निकटतम घनिष्ठ मित्र होते हैं। उनसे कुछ भी न छिपाइये। कुछ समय बाद आपका चेतनात्मक और मानसिक स्तर इतना विकसित होगा कि आप गुरु की प्रेरणा तरंगों को समझने में सक्षम होंगे और इस प्रकार आत्मिक एवं मानसिक स्तर पर उनके और आपके बीच दूरी समाप्त हो जायेगी।

कर्म संन्यासी के रूप में गुरु के मिशन में आपकी विशेष भूमिका होती है। आपका गृहस्थ जीवन आपकी गुरु सेवा के सामर्थ्य को सीमित नहीं करता। यदि आप ग्रहणशील हों तो गुरु की सशक्त आध्यात्मिक ऊर्जा को प्रभावशाली ढंग से संचरित कर सकते हैं। समाज का सदस्य होने के नाते आप विभिन्न लोगों के सम्पर्क में आते हैं। इसलिये उनके बीच अपने गुरु के ज्ञान और शिक्षाओं का प्रचार कर सकते हैं।

दूसरों पर अपनी विचारधारा न थोपिये। उपदेश द्वारा नहीं, बल्कि आदर्श प्रस्तुत कर लोगों को शिक्षित कीजिये। आपको लाखों की भीड़ में प्रकाश स्तंभ की तरह आलोकित होना चाहिए, ताकि दु:ख-दर्द से परेशान लोग प्रेरणा और सहायता के लिये आपकी ओर आकर्षित हों। आपका सन्तुलन, ज्ञानालोक तथा विवेक उन लोगों के लिये मार्गदर्शक दीपस्तंभ बने, जिन्हें आध्यात्मिक पथ प्रदर्शन तथा ज्ञान-लाभ की आवश्यकता हो। इस प्रकार आप उन्हें अध्यात्म मार्ग पर ले चलने में सहायक हों। कर्म संन्यासी के रूप में आप गुरु को दक्षिणा देकर उनके महान् कार्य में योगदान कर सकते हैं। दक्षिणा का तात्पर्य गुरु के समक्ष अहम् का समर्पण होता है। धन-सम्पत्ति के प्रति लगाव आपके अहम् को मजबूत बनाता है। आप अपनी प्रिय वस्तुओं को जब गुरु को दक्षिणा के रूप में अर्पित करते हैं, तो आपके व्यक्तित्व की गहराई में पैठे अहं की जड़ें कटती हैं। याद रखिये, गुरु आपसे भेंट के रूप में मिलने वाली धन-सम्पत्ति के भूखे नहीं होते। उनका एकमात्र उद्देश्य आपका आध्यात्मिक कल्याण होता है, जिसके लिये उन्हें आपके धन या सम्पत्ति की कतई आवश्यकता नहीं होती है।

सच तो यह है कि जब भी आप गुरु को दक्षिणा देते हैं, तब इससे आपकी जरूरतें पूरी होती हैं, उनकी नहीं। जब आप अपने धन का एक अंश उन्हें अर्पित करते हैं, तो उसके साथ ही आपका अहं भी विसर्जित होता है, कर्म कटते और आध्यात्मिक विकास में गति आती है। आप दक्षिणा देते दिखते हैं, परन्तु यथार्थ में आप कुछ पाते ही हैं। आप अपने भीतर की किसी कमी की पूर्ति करते हैं। एक तरफ आपका अहं विसर्जित होता है, तो दूसरी ओर आपकी आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती है। एक शिष्य के नाते संसार की बड़ी-से-बड़ी प्रियतम वस्तु भी गुरु को समर्पित करने में किंचित् भी झिझक नहीं होनी चाहिए। गुरु सर्वोत्तम वस्तु के हकदार होते हैं, क्योंकि उन्होंने स्वयं को अपने शिष्यों के आध्यात्मिक उन्नयन के लिये समर्पित कर दिया है। वे सम्पन्न-विपन्न, सुखी-दु:खी, कमजोर-बलवान् सभी का मंगल करते हैं तथा उनसे किसी रूप में प्रतिदान की अपेक्षा नहीं रखते। इसलिए आपको सपने में भी ऐसी महान् आत्मा की सेवा और सहायता करने में संकोच नहीं करना चाहिए।

एक शिष्य के रूप में गुरु के सम्बन्ध में आपको निम्नलिखित बातें हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए। सर्वप्रथम ऐसे गुरु को खोजिये जो एक सामान्य शिक्षक से कुछ और बढ़कर हो। दूसरी बात, उनके साथ आपका गहरा तादात्म्य हो, उन पर शंका न हो, बेझिझक उनकी शिक्षाओं को ग्रहण करें और उन्हें अनावश्यक कसौटियों पर न कसें। तीसरी चीज, स्वयं को उनकी कृपा और प्रसाद का माध्यम बनायें तथा अपने भीतर उच्च आध्यात्मिक चेतना को विकसित कर उनके आदेशों और प्रेरणाओं को ग्रहण करने का सतत् प्रयास करें। अन्तिम तथा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जब भी अवसर मिले गुरु सेवा करने से पीछे न हटिये।

– 'कर्म संन्यास' से उद्धृत

गुरु ज्ञान गंगा

स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

श्री गुरु 'अखण्ड मण्डलाकार' हैं, सम्पूर्ण चराचर जगत् में व्याप्त हैं, 'तत्पद' (ब्रह्मपद) के दिखाने वाले हैं। गुरु गीता में यह स्पष्ट ही कहा है कि गुरु होने के योग्य वही है, जो अपने शिष्य को अन्धकार से निकालकर प्रकाश में ले जाए। महात्मा कबीर कहते हैं –

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाय।
बलिहारी गुरुदेव की जिन गोविन्द दियो लखाय॥

महात्मा कबीर आगे कहते हैं –

कान फूंका गुरु हद का, बेहद का गुरु और।
बेहद का गुरु जब मिले, तब लागे हरि का ठौर॥

गीता के चौथे अध्याय के चौंतीसवें श्लोक में ज्ञानी और तत्त्वदर्शी गुरु के पास जाने का उपदेश है। ऐसे गुरु अत्यन्त दुर्लभ हैं पर काम तो उन्हीं से बनेगा। सच्चे गुरु का मिलना बड़ा कठिन है, और इसीलिये योग साधना भी कठिन है। ऐसे गुरु बहुत कम मिलते हैं जिनमें योग की शक्ति होती है, और अपने शिष्यों को अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने की क्षमता होती है।

गुरु के रूप में पथ प्रदर्शन का नया मार्ग बताने के लिए भगवान नारायण आये गुरु वेदव्यास के रूप में। और तब से ही गुरु एवं गुरु पूर्णिमा दिवस का श्री गणेश हुआ। फिर तो हमारे भारत देश में एक-से-एक सन्त, महात्मा और अवतारी पुरुषों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनके महान् कार्यों और पथ प्रदर्शन से इतिहास भरा हुआ है। हमारे पुराणों, गीता, भागवत, रामायण तथा सन्तों की जीवनी से हमारा मार्ग दर्शन होता रहता है। जैसे-जैसे समय बीतते गया वैसे-वैसे सन्त-महापुरुष पथ प्रदर्शन करते गये। आदिगुरु शंकराचार्य आए, परमहंस रामकृष्णदेव आए, स्वामी विवेकानन्द जी आए, महर्षि रमण आए, अरविन्द आए, स्वामी दयानन्द आए। 'तू कहता कागज की लेखी मैं कहती आँखों की देखी' – मैंने भी जिन्हें देखा है उन्हीं की बातें बताऊँगी। उनके बाद इस देवपूज्या धरती पर समकालीन शक्तियों के साथ महामण्डलेश्वर स्वामी शिवानन्द जी और परमहंस सत्यानन्द जी आते हैं। स्वामी शिवानन्द जी का विश्वास शिष्यत्व परम्परा को कायम करने में नहीं, समस्त मानव जाति को समानता का स्तर

प्रदान करने में था। उन्होंने कहा, 'गुरु कैसा और शिष्य कैसा, हम और तुम ईश्वर की सन्तान हैं, हम सब भाई-भाई हैं।' इसीलिये गरीब-अमीर, विद्वान्-अनपढ़, दुराचारी-सुविचारी, सभी को एक साथ मिलकर चलने की प्रेरणा दी। मलाया को कर्मक्षेत्र के रूप में अपनाने वाले प्रख्यात सर्जन स्वयं की शक्ति को मूर्त रूप देने भारत आये। ऑपरेशन टेबुल पर शरीर को क्षत-विक्षत कर देखा और सोचा यह तो कार्य शरीर है, कारण शरीर कहाँ है। जीव को जान लेने के बाद उनकी दृष्टि जगत् की ओर लगी।

स्वामी शिवानन्द जी ने जिन्दगी के सभी क्षेत्रों को नई दृष्टि से देखा और उन्होंने अपने शिष्यों को कर्मक्षेत्र में उतरने की सलाह दी। वे कहते थे – जिसने संसार त्यागा, वह संन्यासी कैसा? जिसने अपने को ही देखा, वह द्रष्टा कैसा और जिसने दिखावे के लिये ही कौपीन धारण किया, वह साधु कैसा। अत: उनके संस्पर्श से योग ही नहीं, संन्यास, दृष्टि और जीवन की परिभाषा ही बदल गई। आवश्यकता थी केवल जन-जन तक पहुँचाने की।

अब योग दूत के रूप में स्वामी सत्यानन्द जी आते हैं। ये अच्छे शिष्य ही नहीं, गुरु स्वामी शिवानन्द जी के परम्परा में परिवर्तन करने वाले योद्धा भी हैं। स्वामी शिवानन्द जी के सामने ही कई परम्पराओं को तोड़कर यह सिद्ध कर दिया कि मान्यताओं को युग और परिस्थितियों के अनुरूप बदलना होगा। नम्रता को दिखावे की नहीं, अनुभूति की संज्ञा दी और गुरु के निर्वाण के पश्चात् कुछ कर्मों को स्वीकारा तथा कुछ कर्मों का त्याग किया, गुरु-शिष्य परम्परा के अनुसार।

इस तरह स्वामी सत्यानन्द जी क्रान्तिकारी संन्यासी के रूप में आये। स्वामी जी बाल्यकाल से ही जिज्ञासु थे। कॉन्वेट के उद्दण्ड विद्यार्थी से चलकर परमहंस तक, जीवन का हर चरण सफलता और उपलब्धियों का कर्मक्षेत्र बना। उनके सामने कई अधूरे कार्य थे जिन्हें पूरा करना था।

परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। भारतीय संस्कृति को लेकर चलें और विश्व को छोड़ दें तो यह भी ठीक नहीं।

विज्ञान उन्नति कर रहा है, इसलिये उन्नति के साथ भी चलना चाहिये। लोग आज योग को गलत समझ रहे हैं। अत: उन्हें योग के विभिन्न अंग-उपांगों को ठीक से समझाया जाये ताकि उनकी वास्तविक मान्यता स्थिर हो सके।

पाश्चात्य संस्कृति को हम आँख बन्द कर अपना रहे हैं। जो त्याज्य है उसका विष हमारे खून में मिलता जा रहा है।

व्यक्ति आज न शरीर से स्वस्थ है, न मन से। विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ तथा तनाव उसे घेरे हुये हैं। जहाँ संघर्षों की अग्नि में पड़कर कुन्दन जैसा दमकना चाहिये, वहाँ वह आत्महत्या कर लेता है। क्यों?

मनोविज्ञान के विद्यार्थी होने के नाते स्वामी जी सूत्र रूप में संस्कार को लेकर चलते हैं, और वे योग का विस्तार कर रहे हैं, जो रूढ़िवादी अर्थ के रूप में एक

जगह समाहित हो गया था। वे प्रवृत्ति-मार्गीय योगी चाहते हैं। वे कहते हैं जो संघर्षों में न घबराये वही योगी है। जो परिस्थिति का दास नहीं सो योगी, जो संसार में रहकर संसारी न बने सो योगी, जो गृहस्थी में रहकर संन्यासी रहे वह योगी। इस तरह संन्यासियों की नई परिभाषा दी है।

स्वामी जी कहते हैं कि कर्म त्यागने की आवश्यकता नहीं। हर व्यक्ति हर परिस्थिति में उन्नति कर सकता है। हम अपने कर्म को ईश्वर नहीं मानते, इसी से हमें हर कार्य में ईश्वर की छाया नहीं दिखती। स्वामी जी कहते हैं कि जिसे हम शक्ति कहते हैं वह प्रतिभा है, और प्रत्येक मनुष्य में है। प्रतिभा का चक्र जब जागता है तो व्यक्ति में कई गुण प्रकट होते हैं।

स्वामी जी कहते हैं विभूतियों को खोजो, नये इतिहास का पता लगाओ, धर्म ग्रन्थों और दर्शनों को देखो, अच्छे साहित्य पढ़ो। गीता में जीवन तत्त्व को देखो और संसार में जल में कमल सा रहो। वे कहते हैं कि इतना ध्यान रहे कि संसार में भोग तुम्हें भोगना है, ऐसा न हो कि भोग ही तुम्हें भोगने लगें।

स्वामी जी की राय में सच्चा मानव बनने के लिये छोटी उम्र से ही संस्कार डाले जाने चाहिये। अत: वे युवकों को कहते हैं कि योग में तभी आ जाओ जब जीवन आरम्भ हो रहा है। जब जिन्दगी की आधी शताब्दी बीत चुकी हो, ज्ञान का स्रोत सूख रहा हो, प्रतिभा का केन्द्र आवरण में ढक गया हो, तब आने से क्या लाभ? इसीलिये स्वामी जी ने योग आन्दोलन चलाया है।

स्वामी जी अयोग्य शिष्यों की कतार नहीं चाहते। वे ऐसे सिपाहियों का दल चाहते हैं जिनके पाँव कठिनाइयों में भी चट्टान के समान दृढ़ रह सकें, जिनके हृदय में कर्त्तव्यों और उमंगों की ज्वाला उठती हो, जिनके हाथों में इतनी शक्ति हो कि यदि वे दीवार पर मुक्का मारें तो दीवार भले न टूटे, प्लास्टर तो झड़े ही। स्वामी जी ऐसे भक्त चाहते हैं जिनके दिल में कर्त्तव्य व प्रेम की मशाल और भुजाओं में शौर्य का रक्त बहता हो।

स्वामी जी के अनुसार हर व्यक्ति एक अच्छा साधक बनने के लिए स्वतन्त्र है। आप चाहे किसी भी मत को माने, पर अपने चरित्र निर्माण के लिये आप स्वयं उत्तरायी हैं। महर्षि अरविन्द के शब्दों में, 'हमें ऐसा बनना है कि अतिमानस शक्तियाँ स्वयं उतरने के लिये बाध्य हो जायें।'

युग बदलता है, मानव बदलते हैं, गुरु और शिष्य भी बदलेंगे ही। पहले के सन्त-महात्मा गुफाओं में तपस्या कर के अमरत्व को प्राप्त करते थे। आज का युग कलियुग है। जैसे बच्चों को सिखाया नहीं, कर के दिखाया जाता है, वैसे ही गुरु को भी शिष्यों को सिखाना पड़ेगा।

पूजनीय स्वामी शिवानन्द जी के कुछ शब्द – युग की मांग बदल रही है, समाज कराहने लगा है। राजगद्दी छोड़कर राजा उतरें, भोग विलास छोड़कर संन्यासी।

आज धर्म की सुखद छाया में विश्राम करना छोड़कर महन्त उतरें। जिस समाज ने हमें युग-युग से भोजन, वस्त्र, पूजा और श्रद्धा, धन और ऐश्वर्य साधन दिया, आज हम उसके प्रतिदान के लिये तैयार हो जायें। जो समाज हमें पालता-पोसता आया है, आज हमें उसका ऋण चुकाना है। साधु और संन्यासी विश्वशांति योजना के केन्द्र हैं। विश्व शान्ति में उनका योग सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। वे आक्रमणकारी जातियों को भी एकत्र और संघबद्ध करने के साधन हैं। सच्चे साधु-संन्यासियों के जीवन का उद्देश्य विश्वबंधुत्व का प्रचार करना है। संन्यासी का जीवन बहुत ही कठिन होता है। वह दोधारी खड्ग के समान है। संन्यासी यदि शुद्ध और सात्त्विक जीवन यापन नहीं करता तो वह सघन वन में पथभ्रष्ट पथिक के समान है।

और स्वामी शिवानन्द जी ने अपने शिष्यों को इसी तरह ढाला भी है। गुरु पूर्णिमा के पावन अवसर पर गुरु और शिष्य अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग हो जायें तो स्वर्ण युग समीप है।

जय गुरु शिव गुरु हरि गुरु राम।
जगत गुरु परम गुरु सद्गुरु श्याम॥

– मूलत: योगविद्या के जुलाई 1973 अंक में प्रकाशित

गुरु परम्परा को नमन

नवल किशोर प्रसाद सिंह, मुंगेर

(राष्ट्रीय महासचिव, अखिल भारतीय प्रारम्भिक शिक्षक महासंघ)

मुंगेर का सौभाग्य है कि विश्व के हस्ती ज्योतिपुंज महामानव, पूज्य स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी की कृपा मुंगेर पर रही, तभी तो अपने आज्ञाकारी परम शिष्य स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी को मुंगेर योग विद्यालय की स्थापना की सम्पूर्ण जिम्मेदारी सौंप दी गई। स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी उन महापुरुषों में से थे जिन्होंने आत्मा के दर्शन को न केवल व्याख्यापित किया अपितु उसे जीया भी। वे प्रतिभा के धनी, सूक्ष्मद्रष्टा एवं प्रशासनिक सूझबूझ वाले थे। वे महान् विभूति आज हमारे बीच नहीं हैं, परन्तु वे हमेशा-हमेशा के लिए स्मरण किये जाते रहेंगे। वे अध्यात्म-आकाश में प्रखरता से तपते एक अद्‌भुत ज्योतिपुंज थे, एक महासूर्य थे। समाज और राष्ट्र में व्याप्त अन्याय, अत्याचार, अनैतिकता और विषमता के झंझावतों से सदा जूझते रहते थे। उन्होंने मानवीय एकता, राष्ट्रीय चरित्र निर्माण, नारीशक्ति के विकास, नैतिक मूल्यों के जागरण आदि की दिशा में जो महान् कार्य किये उनके लिए आने वाली सदियाँ उन्हें गौरव एवं सम्मान के साथ याद करेंगी। सामान्य आदमी से लेकर राष्ट्र के शीर्षस्थ नेतृत्व ने उनका आशीर्वाद प्राप्त कर धन्यता का अनुभव किया।

एक दिन अचानक समाचार मिला कि स्वामी सत्यानन्द जी सदा-सदा के लिए मुंगेर छोड़कर देवघर चले गये। संवाद सुनकर बड़ी पीड़ा हुई। लगा कि बहुत बड़ी सम्पत्ति लुट गयी। जब यह जानकारी मिली कि वे जाते-जाते अपने परम प्रिय, योग्य, कर्मठ, लगनशील और विद्वान् शिष्य स्वामी निरंजनानन्द जी को अपना उत्तराधिकारी बनाकर चले गये, तब मन को बड़ी शान्ति मिली। प्रसन्नता की बात है कि स्वामी निरंजनानन्द जी के संरक्षण में संस्था तेजी से आगे बढ़ रही है।

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती जी अध्यात्म, दर्शन, सभ्यता, संस्कृति और मानवीय चरित्र के उत्थान के लिए समर्पित हैं। वे अनुकम्पा, परोपकार, शांति और सौहार्द जैसे मानवीय मूल्यों के जीवन्त स्वरूप हैं। अत्यन्त विनयशील, स्वामीजी इन दिनों तनाव और अशान्ति से घिरे समाज को शांति एवं संयम युक्त जीवन जीने का संदेश बिहार योग विद्यालय, मुंगेर के माध्यम से दे रहे हैं। स्वामीजी शांत एवं मृदु व्यवहार से संवृत, आकांक्षा-स्पृहा से विरक्त एवं जनकल्याण के लिए समर्पित भारतीय संन्यास परम्परा के गौरव पुरुष हैं।

स्वामी निरंजनानन्द जी एक ऐसे व्यक्ति का नाम है जिसने अपने जीवन को पर-कल्याण के लिए समर्पित कर रखा है। स्वामीजी का व्यक्तित्व आकर्षक, प्रभावक एवं प्रेरक तो है ही, साथ-ही-साथ अन्य अनेक विशेषताओं से ओत-प्रोत

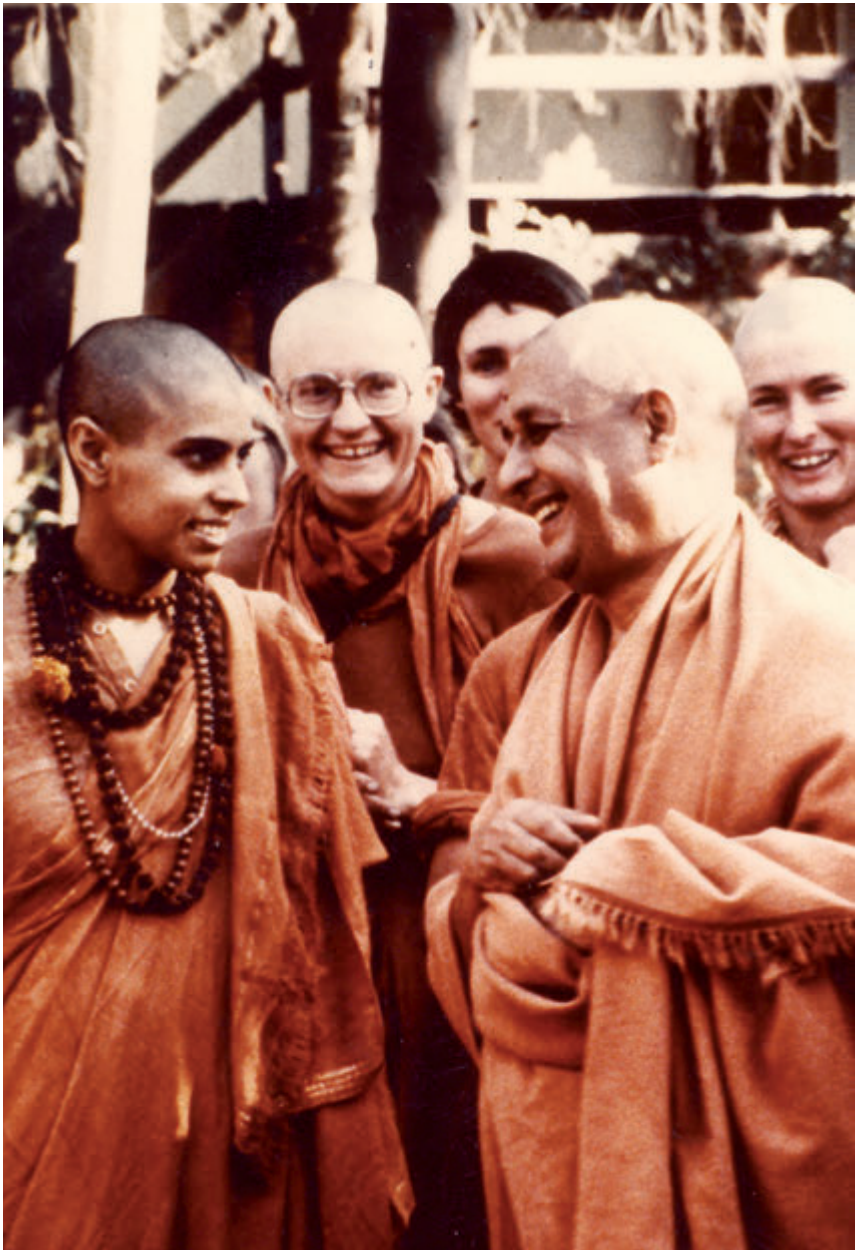

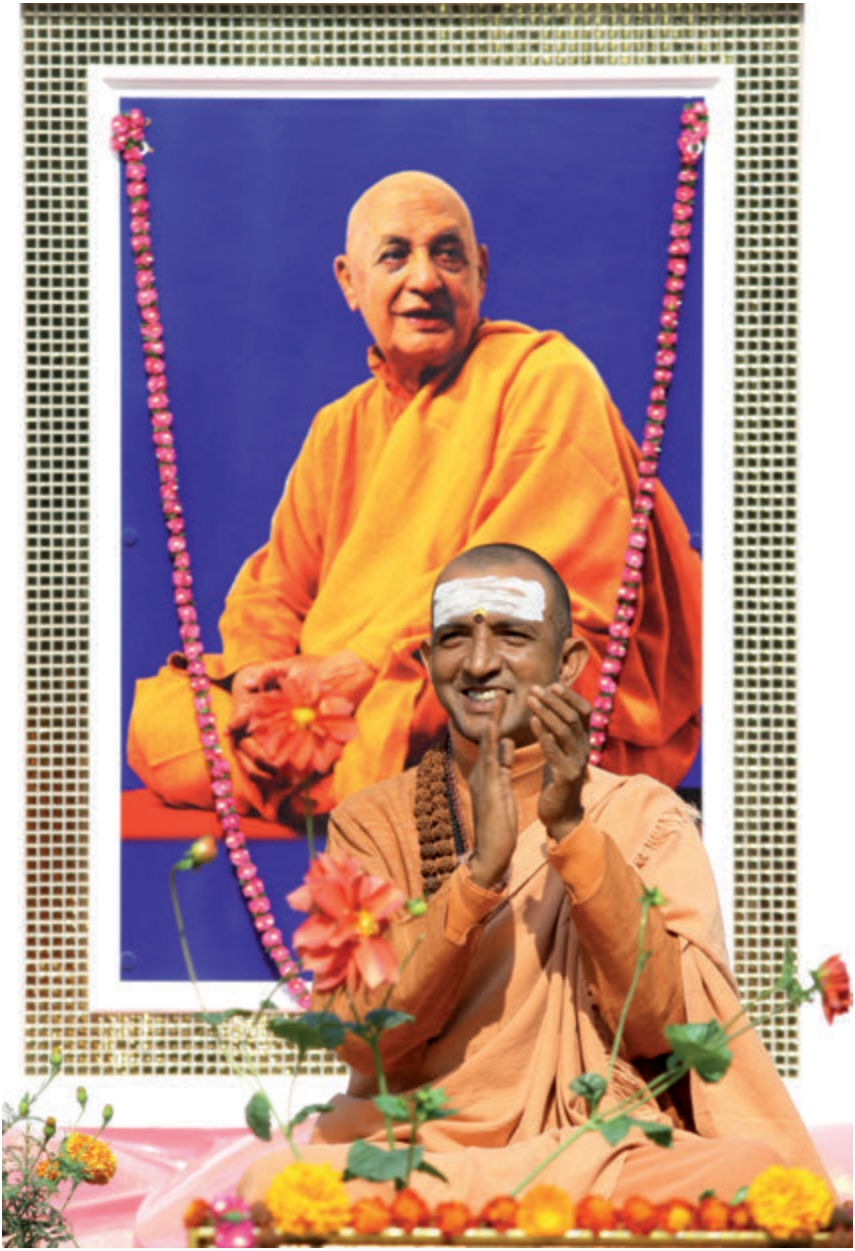

है। इनके हाथों में एक ऐसी जनजागरण की फौज, एक ऐसा दीपक (बाल एवं युवा योग मित्र मण्डल) है जिसके प्रकाश से हजारों-लाखों व्यक्ति आलोकित हो रहे हैं। इनके नयनों से करुणा की ऐसी अजस्र धारा प्रवाहित होती रहती है जिससे व्यक्ति तनाव एवं अवसाद से मुक्त हो जाता है। ये एक विलक्षण ज्ञानसम्पन्न स्वामी हैं, जो अपने विद्वत्तापूर्ण संदेशों द्वारा लाखों लोगों को नैतिकता का संदेश दे रहे हैं। बिहार योग विद्यालय का दायित्व संभालने पर पूर्व आचार्यों की संपदा को सुरक्षित रखते हुए अपने चरणों को गतिशील किया। लाखों लोगों को अंधकार से मुक्ति दिलाकर सन्मार्ग पर लाने का भरसक प्रयास किया। स्वामीजी प्रभावशाली प्रवचनकर्त्ता हैं, उनकी प्रवचन शैली सहज, सरल एवं हृदय को छूने वाली होती है। प्रवचन में विचारों की मौलिकता स्पष्ट झलकती है। स्वामीजी जब मधुर कंठ से संगीत की स्वर लहरियाँ छेड़ते हैं तब सारी सभा संगीत रस में आकण्ठ डूब जाती है। पूरा वायुमण्डल संगीतमय बन जाता है। बच्चों और महिलाओं से लेकर वयोवृद्ध जन भी स्वामीजी के साथ भाव रस में विभोर होकर झूम-झूमकर नाचने और गाने लगते हैं।

ऐसे यशस्वी स्वामी निरंजनानन्द जी की ख्याति युगों-युगों तक महकती रहे। वे लम्बी अवधि तक चिरायु और निरामय रहें, यही ईश्वर से मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ हैं।

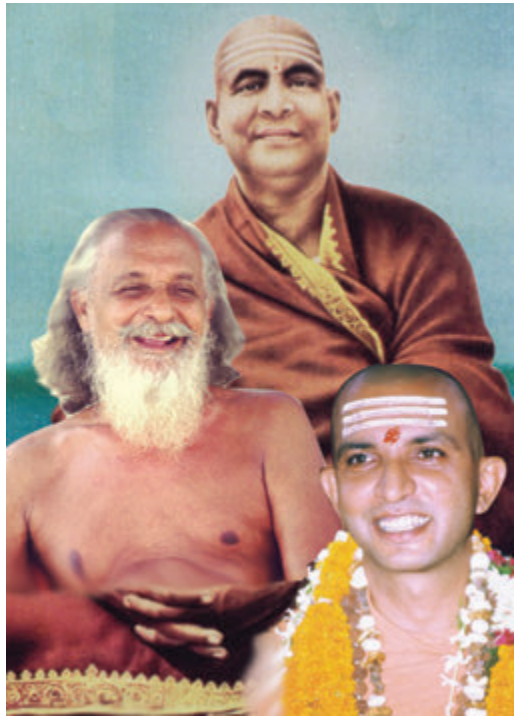

आध्यात्मिक सद्गुरु

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

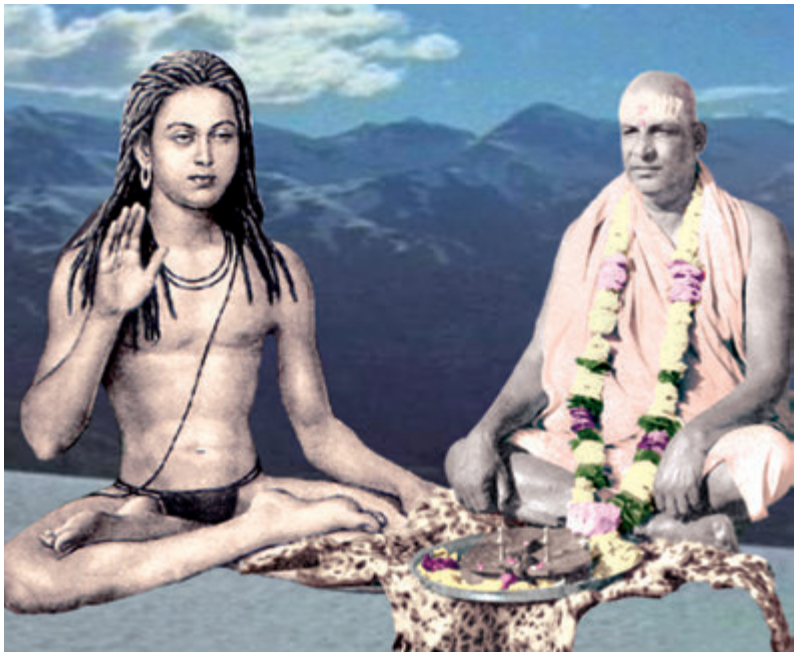

वेदों में कहा गया है – 'जिस व्यक्ति का गुरु है, वह ज्ञानी है।' जिसे गुरु प्राप्त हैं, वही ब्रह्म या परम सत्ता को जान सकता है। गुरु से प्राप्त ज्ञान ही पूर्ण ज्ञान होता है।

गुरु मार्गदर्शक होते हैं। आध्यात्मिक राजमार्ग पर गुरु ही एकमात्र सहारा होते हैं। ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हेतु गुरु का होना परमावश्यक है। शास्त्र-ज्ञान में निपुण होने के बावजूद भी आप गुरु की सहायता बिना आत्मज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते।

गुरु तीनों लोकों के प्रकाश-स्तम्भ हैं। वे ज्ञान की जाज्वल्यमान् ज्योति हैं। जो अपने गुरु के प्रति भक्ति-भाव से युक्त होकर उनके चरणों में स्वयं को समर्पित करता है, वही आध्यात्मिक सत्य को ग्रहण करने में सक्षम होता है।

ईश्वर कभी आपसे दूर नहीं हैं। बन्धन की इस अवस्था में वही प्रभु अदृश्य रूप से आपका पालन-पोषण करते हैं और वे ही आध्यात्मिक गुरु के रूप में आकर आपका मार्गदर्शन करते हैं। इसलिए अपने गुरु को हाड़-मांस से निर्मित एक सामान्य व्यक्ति कदापि मत समझिए। उन्हें ईश्वर के समतुल्य मानिए। एक सत्यान्वेषी जिज्ञासु के लिए यह पहली शर्त्त है।

श्री रामकृष्ण परमहंस ने एक दीन-हीन, परन्तु आज्ञाकारी एवं भक्त रसोइये को अपना शिष्य बनाया, क्योंकि उसमें उन्हें आध्यात्मिक ज्योति दिखाई पड़ी। सिक्खों के एक गुरु भिश्ती का काम करते थे, तो दूसरे उबला चना बेचते थे।

आपकी आँखें अज्ञान के मोतियाबिन्द से ढकी हुई हैं, इसीलिए तो आप अन्धे हैं। अपने गुरु की शिक्षाओं का सख्ती से पालन कीजिए और आध्यात्मिक मार्ग पर दृढ़ता से आगे बढ़ते जाइये। गुरु द्वारा बताये गये उपचार से अज्ञान का मोतियाबिन्द अपने आप दूर हो जाएगा।

यदि आप आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो वेदों में आपकी असीम श्रद्धा होनी चाहिए। वेदों में असीम श्रद्धा का तात्पर्य गुरु में असीम श्रद्धा से है, क्योंकि वेदों की शिक्षा गुरु की वाणी के माध्यम से ही अभिव्यक्त होती है।

आपके अन्दर सद्गुरु से मिलन हेतु अतिशय प्रेम एवं प्रबल इच्छा होनी चाहिए। तभी आपको उनका दर्शन प्राप्त हो सकेगा। गुरु के सामने अपने हृदय को खोल दीजिए और उनकी कृपा की याचना कीजिए। नम्रता एवं आत्मत्याग के माध्यम से ही ईश्वर या गुरु की कृपा प्राप्त होती है। इस हेतु आपको अध्यवसायपूर्वक प्रयास करना चाहिए। तभी आप लाभान्वित हो सकेंगे।

गुरु का मार्गदर्शन तथा श्रद्धा-भक्ति-आत्मसमर्पण युक्त साधना ही सभी आध्यात्मिक दर्शनों और धर्मों के आधार रहे हैं। सब के प्रति प्रेम, इन्द्रिय संयम, ब्रह्मनिष्ठ गुरु का मार्गदर्शन, गहन श्रद्धा और आत्मत्याग – ये सभी शीघ्र लक्ष्य-प्राप्ति में निश्चित रूप से सहायक होते हैं।

एक जीवनमुक्त ऋषि ही वास्तविक गुरु और आध्यात्मिक मार्गदर्शक होते हैं। ऐसे सद्गुरु पूर्ण ब्रह्मविद् या ब्रह्मज्ञानी होते हैं। या यूँ कहें वे ब्रह्म के समरूप ही होते हैं। वे संसार के लिए वरदान होते हैं। अज्ञान के भवसागर में गोता लगा रहे लोगों के लिए वे आध्यात्मिक प्रकाश-स्तम्भ होते हैं। ज्ञान की मशाल हाथों में लिए वे साधकों का निरन्तर मार्गदर्शन करते हैं। ऐसे सद्गुरुओं और सन्तों की जय हो!

सद्गुरु अति विनम्र होते हैं। बाहर से वे एक सामान्य आदमी जैसे ही लगते हैं। वे कभी इस बात का प्रचार नहीं करते कि मैं सद्गुरु या ब्रह्मज्ञानी हूँ। वे कभी ऐसा नहीं कहते कि 'मैं एक प्रबुद्ध व्यक्ति हूँ। मैं अवतार हूँ। मैं तुम्हें मुक्ति प्रदान करूँगा। मुझे अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हैं।' वे पूर्णत: निष्काम होते हैं।

सद्गुरु धन, यश या प्रतिष्ठा की कामना नहीं करते। उनके अन्दर आश्रम या पन्थ की स्थापना की इच्छा भी नहीं होती। वे तो केवल समस्त संसार की उन्नति एवं विश्वबन्धुत्व की स्थापना के लिए प्रयासरत रहते हैं। वे कहते हैं, 'मेरा न कोई अनुयायी है न शिष्य; मेरा न कोई आश्रम है न सम्पत्ति।' किसी भी व्यक्ति या वस्तु से उनकी आसक्ति नहीं होती। वे 'मैं' और 'मेरे-पन' की अवधारणा से पूर्णत: मुक्त होते हैं।

वे अपने आस-पास रहने वाले लोगों को कभी यह प्रचार करने की अनुमति नहीं देते कि उन्हें सिद्धियाँ प्राप्त हैं या वे एक पहुँचे हुए महात्मा हैं। वे लोक-प्रसिद्धि के प्रचार से सर्वथा दूर रहना चाहते हैं। वे हमेशा स्वयं को छिपाए रहते हैं। यदि किसी स्थान में उन्हें प्रसिद्धि मिल जाती है, तो वे तत्काल उसे छोड़ देते हैं।

यदि कोई व्यक्ति कहता है कि 'मैं महात्मा हूँ, मैं आत्मज्ञान-प्राप्त सद्गुरु हूँ', और यदि उसके शिष्यगण यह प्रचारित करते हैं कि उनके गुरु अनेक सिद्धियों से युक्त हैं जिनका उन्होंने प्रदर्शन भी किया है, तो समझ लीजिए कि वह व्यक्ति महात्मा नहीं है। उपनिषदों द्वारा स्पष्ट घोषणा की गयी है कि जो व्यक्ति कहता है कि 'मैं ब्रह्म को जानता हूँ', वह ब्रह्म को नहीं जानता, और जो कहता है कि 'मैं ब्रह्म को नहीं जानता', वह वास्तव में ब्रह्मज्ञानी है।

यदि आप किसी व्यक्ति की संगति में उन्नत और उदात्त अनुभव करते हैं और आप पाते हैं कि वे सरल, विनीत, विनम्र, सहिष्णु, दयालु, निष्काम, नि:स्वार्थ, शान्त, प्रेममय एवं विवेकी हैं, तो उन्हें अपना गुरु बना लें। अनेक वर्षों तक सद्गुरु के सान्निध्य में रहने के बावजूद भी उनकी महानता को समझ पाना बहुत कठिन है। वे समुद्र के समान गहरे होते हैं। उनकी महिमा अकथनीय, ज्ञान वर्णनातीत तथा अवस्था अबोधगम्य होती है। अपने गुरु की सेवा करना आपका प्राथमिक कर्त्तव्य है। आप उनके शरीर की सेवा करें, वे आपकी आत्मा का उत्थान करेंगे।

सिद्धियों से युक्त होना किसी महात्मा की महानता की पहचान नहीं है, और न ही इससे यह प्रमाणित होता है कि उन्हें आत्मज्ञान प्राप्त है। सद्गुरु किसी चमत्कार अथवा सिद्धि का प्रदर्शन नहीं करते। जिज्ञासुओं को प्रोत्साहित करने तथा उनके हृदय में अतीन्द्रिय शक्तियों के प्रति विश्वास पैदा करने हेतु वे कभी-कभी सिद्धियों का प्रदर्शन अथवा उपयोग कर सकते हैं। सद्गुरु तो असंख्य सिद्धियों से सम्पन्न तथा समस्त प्रकार के दिव्य ऐश्वर्यों से युक्त होते हैं।

सच्चे गुरु आत्मज्ञानी होते हैं। उन्हें आत्मा एवं वेदों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। वे समदृष्टि एवं सन्तुलित मन से युक्त तथा राग-द्वेष, काम-क्रोध-लोभ-मोह-घमण्ड एवं अहंकार से मुक्त होते हैं। वे दया के सागर होते हैं। उनकी उपस्थिति मात्र से जिज्ञासु शान्ति एवं उन्नत मनोवस्था प्राप्त कर लेता है तथा उसके समस्त सन्देह दूर हो जाते हैं। वे पूर्णतया निर्भय होते हैं। वे किसी व्यक्ति से कुछ अपेक्षा नहीं रखते। उनका चरित्र अन्य लोगों के लिए आदर्श होता है। वे आह्लाद एवं आनन्द की प्रतिमूर्ति होते हैं। वे सदैव सच्चे जिज्ञासुओं की खोज में रहते हैं।

दुर्भाग्यवश यह संसार नकली गुरुओं से भरा हुआ है। ऐसे लोगों से सावधान रहिए। वे निष्कपट एवं भोले लोगों का शोषण करते तथा उन्हें अज्ञान के अंधेरे गर्त्त में डालते हैं। वे लोगों को पथभ्रष्ट करते हैं। यह तो वैसा ही हुआ जैसे एक अन्धा

आदमी दूसरे अन्धे आदमी का मार्गदर्शन करे। सिद्धियाँ व्यक्ति को ब्रह्म एवं ब्रह्मज्ञान से दूर ले जाती हैं। किसी व्यक्ति की सिद्धियों से प्रभावित मत होइए।

यदि कोई व्यक्ति यश, प्रसिद्धि, सम्पत्ति या स्वार्थपूर्ति हेतु सिद्धियों का प्रदर्शन करता है, तो समझना चाहिए कि वह धूर्त्त है। कुछ समय के बाद ऐसे व्यक्ति की सिद्धियाँ लुप्त हो जाती हैं। इस प्रकार के अनेक उदाहरण देखने में आते हैं।

अनुयायीगण अपने गुरु की शक्ति के बारे में अनेक तरह के प्रचार-प्रसार द्वारा उनकी प्रतिष्ठा को आँच लगाते हैं। आध्यात्मिक गुरुओं को अपने शिष्यों को कड़ाई से यह चेतावनी देनी चाहिए कि वे ऐसा न करें। लोग ऐसे गुरुओं में कतई विश्वास नहीं करते जिनके अनुयायी उनके बारे में तरह-तरह का प्रचार करते हैं। प्रारम्भ में वे ऐसे गुरुओं के प्रति आकृष्ट हो सकते हैं, किन्तु शीघ्र ही उनका विश्वास टूट जाता है। वे पीछे हट जाते, उनसे सम्बन्ध तोड़ लेते, तथा उनकी आलोचना भी करने लगते हैं। आखिर आम लोग भी समझदार और विवेकी होते हैं। यथार्थ को आप कब तक छिपा सकते हैं? अन्ततः सत्य तो प्रकट होगा ही। मयूरपंख लगाए हुए कौए की पहचान में अधिक विलम्ब नहीं हो सकता।

भारत अद्वैत दर्शन की पवित्र भूमि है। यहाँ दत्तात्रेय, शंकराचार्य एवं वामदेव जैसे महात्मा अवतरित हुए, जिन्होंने जीवन एवं चेतना के एकत्व का उपदेश दिया। पर आज वही भारत सम्प्रदायवादियों से भरा हुआ है। कितनी दयनीय स्थिति है यह! समुद्र के किनारे फैले हुए बालू के कणों को गिनना सरल है, किन्तु आज भारत में प्रचलित सम्प्रदायों की गिनती करना कठिन है। प्रतिदिन कोई-न-कोई मत या सम्प्रदाय कुकुरमुत्ते की तरह उत्पन्न हो रहा है, जो पहले से मौजूद कलह को और अधिक बढ़ा देता है। चारों तरफ निराशाजनक असामंजस्य एवं आपसी फूट का राज्य है। सब ओर मतभेद, मुकदमे, हाथा-पाई, दुष्प्रचार एवं मुठभेड़ का बोलबाला है। सड़कों पर एक गुरु के शिष्य दूसरे गुरु के शिष्यों से लड़ रहे हैं। सर्वत्र शान्ति और सामंजस्य का अभाव है।

चैतन्य महाप्रभु, गुरु नानक और स्वामी दयानन्द, सभी उदारमना एवं उदात्त आत्माएँ थे। उनके सभी उपदेश उत्कृष्ट एवं सार्वभौमिक थे। वे कभी अपना पंथ, मत या सम्प्रदाय स्थापित करना नहीं चाहते थे। यदि वे आज हमारे बीच होते, तो अपने अनुयायियों के कारनामों पर आँसू बहाते। अनुयायी लोग ही तो गम्भीर गलतियाँ और भारी भूलें करते हैं। उनका हृदय संकुचित तथा मन संकीर्ण होता है। वे मतभेद, परेशानी और दलगत भावना पैदा करते हैं।

एक आध्यात्मिक प्रणेता को कदापि अपने सम्प्रदाय या पंथ की स्थापना नहीं करनी चाहिए। उन्हें दूर-दृष्टि से काम लेना चाहिए। पंथ की स्थापना का तात्पर्य होता है विश्व-शान्ति को भंग करने वाले एक कलह-केन्द्र का निर्माण। ऐसा व्यक्ति लाभ की अपेक्षा देश को अधिक हानि पहुँचाता है। हाँ, संकीर्ण के बजाय व्यापक

और सार्वभौमिक सिद्धान्तों पर आधारित संस्था की स्थापना अवश्य की जा सकती है। ये सिद्धान्त और विचारधाराएँ ऐसी हों, जिनका दूसरों के सिद्धान्तों से विरोध न हो तथा जो सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य एवं अनुकरणीय हों।

जड़ भरत, वामदेव एवं सदाशिव ब्राह्मण जैसे लोगों ने परमहंस की तरह जीवन बिताया। उन्होंने आश्रमों की स्थापना नहीं की। उन्होंने न तो कभी मंच से प्रवचन दिया और न ही कोई शिष्य बनाए। तथापि उनका यश पीढ़ी-दर-पीढ़ी उजागर होता चला गया। आज भी लोग उन्हें आदर्श आध्यात्मिक पुरुषों के रूप में स्मरण करते हैं। उन्होंने अपने आदर्श एवं उदात्त जीवनशैली द्वारा लोगों के मानस-पटल पर अमिट छाप छोड़ दी। वे सचमुच महान् आध्यात्मिक विभूतियाँ थे। हिमालय की सुदूर कन्दरा में निवास करने पर भी आत्मज्ञानी पुरुष का स्पन्दन समस्त संसार को शुद्ध करता है। उनका जीवन ही उनकी शिक्षा का मूर्त्त रूप होता है। उनके लिए व्याख्यान या प्रवचन देना आवश्यक नहीं होता। सच्चे गुरु की ऐसी ही महानता होती है!

युवा जिज्ञासुओं को कुछ वर्षों तक एक सद्गुरु के मार्गदर्शन में अवश्य रहना चाहिए। उनमें दास्य भाव होना चाहिए और उन्हें आज्ञापालन एवं विनम्रता की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। यदि वे मनमर्जी करेंगे तो उद्दण्ड और दम्भी हो जाएँगे। आध्यात्मिक मार्ग पर उनकी तनिक भी प्रगति नहीं होगी।

अनेक जिज्ञासु शिकायत करते हैं कि मैं सक्षम गुरु पाने में असमर्थ हूँ। क्या एक रोगी किसी चिकित्सक के परामर्श-कक्ष में प्रवेश करते ही उनकी योग्यता को जान सकता है? अज्ञानी शिष्यगण, जिन्हें तनिक भी आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त नहीं है, तुरंत अपने गुरु को जाँचने-परखने लगते हैं। वे उनकी बाह्य अभिव्यक्ति और रहन-सहन से गलत अनुमान एवं निष्कर्ष निकालते हैं। परमहंसों के तौर-तरीके रहस्यपूर्ण होते हैं। भले ही कन्धे-से-कन्धा मिलाकर आप बारह वर्षों तक उनके साथ रहें, फिर भी आप उनके हृदय एवं ज्ञान की गहराई को शायद ही समझ सकेंगे। ज्ञान और आध्यात्मिक अनुभव तो वास्तव में आन्तरिक अवस्थाएँ होती हैं।

सच्चे गुरु में मुझे पूर्ण विश्वास है। सद्गुरु के प्रति मेरे मन में अत्यधिक श्रद्धा है। सद्गुरु के चरण-कमलों को नमस्कार! मेरा हृदय उनके चरण-कमलों की सतत् सेवा हेतु लालायित रहता है। मेरी मान्यता है कि मन की अशुद्धियों के निष्कासन हेतु गुरु-सेवा से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है। मेरा विश्वास है कि अमरत्व के दूसरे किनारे तक पहुँचने के लिए गुरु का सतत् सान्निध्य ही एकमात्र सुरक्षित नौका है।

यह संसार दिव्यज्ञान-संपन्न महात्माओं से भरा रहे, जो मानवता का मार्गदर्शन करते रहें! आप सभी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सन्तों की सेवा करें और उनका आशीर्वाद प्राप्त करें! आप सभी जीवनमुक्त के रूप में प्रकाशित हों!

क्रीड़ा मनोवृत्तियों की

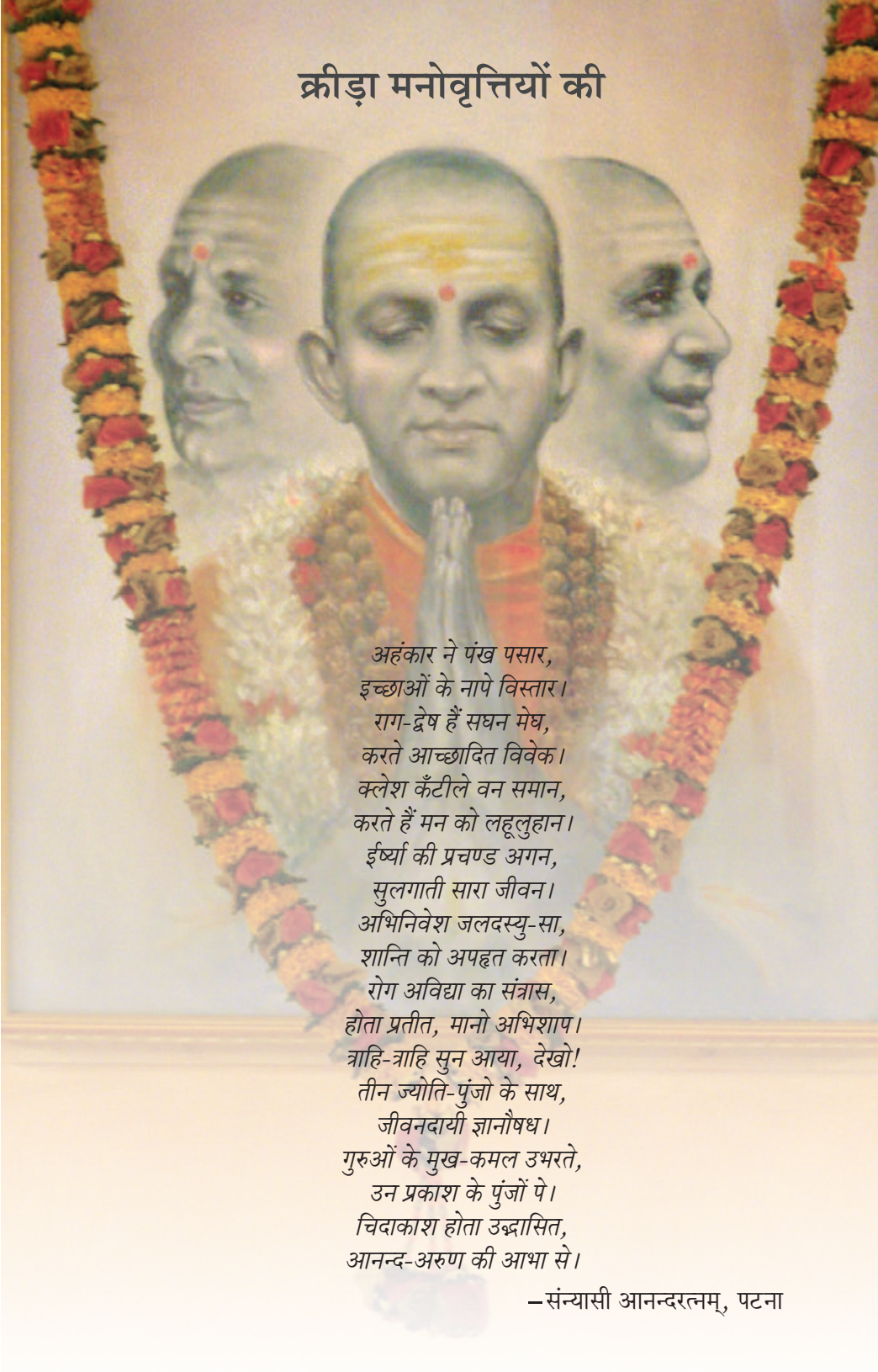

अहंकार ने पंख पसार,
इच्छाओं के नापे विस्तार।
राग-द्वेष हैं सघन मेघ,
करते आच्छादित विवेक।
क्लेश कँटीले वन समान,
करते हैं मन को लहूलुहान।
ईर्ष्या की प्रचण्ड अगन,
सुलगाती सारा जीवन।
अभिनिवेश जलदस्यु-सा,
शान्ति को अपहृत करता।
रोग अविद्या का संत्रास,
होता प्रतीत, मानो अभिशाप।
त्राहि-त्राहि सुन आया, देखो!
तीन ज्योति-पुंजो के साथ,
जीवनदायी ज्ञानौषध।
गुरुओं के मुख-कमल उभरते,
उन प्रकाश के पुंजों पे।
चिदाकाश होता उद्भासित,
आनन्द-अरुण की आभा से।

—संन्यासी आनन्दरत्नम्, पटना

शिष्यत्व ही योग का प्रारम्भ है

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आपके हृदय में ज्योंही योग मार्ग पर चलने की लालसा उत्पन्न हो, चाहे वह शारीरिक-मानसिक कल्याण के भाव से हो या आध्यात्मिक प्रबोधन के लिए, आप इस तथ्य को अवश्य स्वीकार करें कि आपको सर्वप्रथम शिष्य बनना पड़ेगा। तभी आप योग मार्ग पर आरूढ़ हो पायेंगे।

शिष्य एक खुले पात्र के सदृश है, उसमें वर्षा की फुहारें गिरती हैं और धीरे-धीरे यह पात्र भर जाता है। तथापि एक उत्तम पात्र होने के लिए उसका स्वच्छ होना आवश्यक है और यदि उसमें कोई छिद्र है तो उन्हें भी अवश्य बन्द किया जाना चाहिए। अपने व्यक्तित्व की त्रुटियों को दूर किये बिना तथा उसकी पूर्ण सफाई किये बिना सिर्फ यह सोचना पर्याप्त नहीं है कि अब आप एक शिष्य होने जा रहे हैं। यह कार्य एक दिन में या कुछ सप्ताहों में पूर्ण नहीं होते, शिष्य की भूमिका में पूर्णता प्राप्त करने में अनेक वर्ष लगते हैं।

शिष्य होने की इच्छा करना एक बात है, किन्तु आदर्श शिष्य होना एक पूर्णत: भिन्न प्रक्रिया है। प्रारम्भ से ही यह अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि आप अपने व्यक्तित्वरूपी पात्र को सिर्फ अमृतमयी फुहारों से भरने की अपेक्षा ही न करें, बल्कि आपके जीवन के प्रत्येक क्षण के समस्त प्रयास निश्चित रूप से मात्र दो दिशाओं में निर्देशित होने चाहिए – पात्र की सफाई और छिद्रों की मरम्मत।

इस बिन्दु को एक पुरानी कहानी द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। एक बार एक संन्यासी ने एक भक्त व्यवसायी के द्वार पर आकर भिक्षा माँगी। वह व्यक्ति बहुत प्रसन्न हुआ तथा उसने संन्यासी को स्वादिष्ट भोजन कराया। प्रतिदान में उसने मन्त्र-दीक्षा की माँग की तथा स्वयं को अपना शिष्य बना लेने का निवेदन किया। संन्यासी ने कहा, 'सेवा द्वारा अपने को योग्य बनाओ और जब मैं अगली बार आऊँगा तो तुम्हें दीक्षित करूँगा।'

एक वर्ष बीतने के बाद संन्यासी पुन: उसके यहाँ आए और भिक्षा की माँग की। वह उन्हें देखकर बहुत खुश हुआ तथा उनके भिक्षा पात्र में रुचिकर भोजन डालकर उनसे पुन: मन्त्र के लिए आग्रह किया। 'अगली बार', संन्यासी ने उत्तर दिया।

एक वर्ष और बीत गया, संन्यासी पुन: उस द्वार पर आए, भिक्षा प्राप्त की तथा मन्त्र के लिए आग्रह भी, और उन्होंने पुन: वही उत्तर दिया। इस प्रकार बारह वर्ष बीत गए, बारह बार वे वहाँ आए और प्रत्येक बार उनसे मन्त्र हेतु निवेदन किया गया। अन्तत: वह गृहस्थ अपना धैर्य खो बैठा। उसने रुखाई से पूछा, 'आप मुझे कब मन्त्र देने जा रहे हैं? मैं आपको विगत बारह वर्षों से भिक्षा देता आ रहा हूँ और आप इतने अभद्र हैं कि मुझे एक मन्त्र भी नहीं दे सकते।'

तत्क्षण संन्यासी ने अपने भिक्षा पात्र में गृहस्थ द्वारा परोसी गई मलाई एवं अन्य विशिष्ट भोज्य-सामग्रियों पर पेशाब कर दिया। यह देखकर वह चकित रह गया। 'आप ऐसा क्यों कर रहे हैं?' वह चिल्लाया। 'मैंने बारह वर्षों तक भोजन प्रदान कर आपकी सेवा की है और आपने उन सब पर पेशाब कर दिया।'

'क्या यह बिल्कुल वैसा नहीं है जैसा तुम करना चाहते हो?' संन्यासी ने पूछा। 'तुम्हारा हृदय स्वच्छ और तैयार नहीं है और तुम चाहते हो कि मैं तुम्हें दीक्षा और मन्त्र दूँ। मन्त्र की तुम्हारे लिए क्या उपयोगिता होगी? सर्वप्रथम सेवा द्वारा अपने हृदय का शुद्धिकरण करो और जब तुम्हारा हृदय शुद्ध हो जायेगा, तब जिस प्रकार तुम मुझे भिक्षा देते हो मैं तुम्हें मन्त्र-दीक्षा दूँगा।'

यही कारण है कि विश्व के प्रत्येक धर्म में सेवा पर सर्वाधिक बल दिया जाता है। सेवा द्वारा आप अपने उस अहंकार को दूर करने में सक्षम होते हैं जो गुरु और शिष्य, मनुष्य और ईश्वर तथा मनुष्य और मनुष्य के बीच का एक बड़ा अवरोध है। सर्वप्रथम इस अहंकार को दूर करना ही होगा।

अनुशासन और सेवा

सन् 1947 में जब मैं अपने गुरु, स्वामी शिवानन्द सरस्वती के साथ रह रहा था, मैंने आश्रम छोड़ने और स्वतंत्र जीवन बिताने का निर्णय किया। स्वामीजी ने ज्योंही मेरी

इस योजना के बारे में सुना, मुझे अपने पास बुलाया। उन्होंने पूछा, 'तुम क्यों जा रहे हो?' मैंने उत्तर दिया, 'अब मैं हठयोग, राजयोग, कुण्डलिनी योग—सब कुछ जानता हूँ और इनका अभ्यास अपने आप कर सकता हूँ।' उन्होंने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया, 'नहीं, तुम्हें अपने अहंकार, अज्ञान तथा मन के मैल को दूर करना होगा तथा स्वयं को एक बिन्दु में परिणत करना होगा। तभी तुम्हारे अन्दर से प्रकाश प्रकट होगा।'

तदुपरान्त जो कुछ हुआ वह एक लम्बी कहानी है। मैंने अपने व्यक्तित्व की गहराई में जमी वासनाओं, जटिलताओं तथा अवरोधों पर विजय पाने के लिए बारह वर्षों तक आश्रम में रहकर दिन-रात घोर परिश्रम किया। अपने प्रशिक्षण की अवधि में मैं एक नर-कंकाल में परिणत हो गया था। आश्रम में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति मेरी पसलियों की गिनती किया करता था तथा मुझसे पूछता था कि मैं किस प्रकार का ब्रह्मचारी हूँ। मेरा शरीर और मन सेवा में इस तरह पूर्णतया तल्लीन था कि ऐसा एक भी क्षण नहीं था जब मैं विचार, कार्य या स्वप्न में ब्रह्मचारी नहीं था। इस प्रकार अहंकार को दूर भगाने के लिए मैंने अनेक वर्ष गुरु के सान्निध्य में कठोर अनुशासन, कष्ट और तपस्या में बिताये और इसके परिणामस्वरूप जीवन में सुख-शांति तथा आत्मज्ञान की उपलब्धि हुई।

संसार में दो प्रकार के शिष्य पाये जाते हैं; संन्यासी शिष्य तथा सामान्य या गृहस्थ शिष्य। साधु-संन्यासियों के लिए, जिन्होंने अपने परिवार तथा समाज का परित्याग करके उनसे अपने समस्त सम्बन्धों का विच्छेद कर लिया है, शिष्य होने का एकमात्र मार्ग गुरु सेवा के प्रति अपने को पूर्णरूपेण समर्पित करना ही है। अनुशासन एवं समझदारी में पूर्णता आने पर ही परमानन्द की प्राप्ति होती है। आत्मिक शक्ति, धर्म शास्त्रीय ज्ञान, भक्ति, योग या घोर साधना से कोई शिष्य नहीं बनता, शिष्य तो वह परमानन्द की प्राप्ति से बनता है। इसीलिए संन्यासियों को आनन्दम् कहा जाता है।

शिष्यत्व के सोपान

दूसरे प्रकार के शिष्यों में सामान्य या गृहस्थ लोग आते हैं। उन्हें सदैव यह स्मरण रखना चाहिए कि जो जीवन-मार्ग उनके लिए विहित और निर्दिष्ट है, जिसमें परिवार, बच्चे और अनेक सामाजिक उत्तरदायित्व आते हैं, वे सभी शिष्यत्व के सोपान हैं। उनका जीवन सांसारिक पदार्थों के भोग, उपलब्धि और परिग्रह के लिए नहीं है। ये तो सिर्फ बाई-प्रोडक्ट या पार्श्व-प्रभाव हैं। जो जीवन उन्हें मिला है तथा जिन परिस्थितियों और घटनाओं से होकर उन्हें गुजरना होता है, उन सबका प्रधान उद्देश्य एक शिष्य के व्यक्तित्व एवं गुणों के विकास में सहायक होना है।

प्रत्येक गृहस्थ का उद्देश्य और लक्ष्य, चाहे वह जिस किसी भी परिस्थिति में हो, प्रतिक्षण अपना शुद्धिकरण, प्रशिक्षण और रूपान्तरण होना चाहिए। चाहे बच्चे की शिक्षा या विवाह हो या परिवार से सम्बन्धित कोई विशेष कर्त्तव्य, किसी बच्चे

का जन्म या किसी प्रिय व्यक्ति की मृत्यु, गरीबी, समृद्धि, प्रेम-घृणा, लाभ-हानि, ईर्ष्या, लोभ या संवेदना – ये समस्त चीजें व्यक्ति के जीवन में उसे एक शिष्य बनाने हेतु ही आती हैं। प्रतिक्षण जो भी घटित हो रहा है उसके साथ आदमी को स्वयं को समायोजित और अनुशासित करने का प्रयास करना चाहिए। अत: एक गृहस्थ का जीवन उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि किसी साधु-संन्यासी का।

शिष्य के दक्ष या तत्पर होते ही उसके जीवन में गुरु का पदार्पण होता है। गुरु सिर्फ एक शिक्षक नहीं होते; गुरु का अर्थ होता है प्रकाश, प्रबोधन और प्रभा। जब आप शिष्य बनते हैं तो गुरु पहले से ही आपके अन्दर अवस्थित होते हैं, किन्तु आप उन्हें देख नहीं सकते। इसलिए आप किसी व्यक्ति पर गुरुत्व प्रत्यारोपित करते हैं जो आपके बाह्य गुरु बन जाते हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण रहस्य है। व्यक्ति की अचेतन अवस्था को, जो अभी पूर्ण अन्धकार में है, जाग्रत और प्रकाशित करना है। जो इस अवस्था को जाग्रत कर सके वही गुरु है, दूसरा कोई नहीं।

गुरु-मन्त्र

मनुष्य की अचेतन शक्ति उसके आध्यात्मिक व्यक्तित्व का सर्वाधिक गहन पक्ष है। गुरु इसे मन्त्र की सहायता से जगाते हैं। भौतिक जगत् में जो कुछ भी विद्यमान है वह मन द्वारा प्रकाशित होता है या समझा जाता है। किन्तु सिर्फ यही जगत् अस्तित्व में नहीं है। अस्तित्व का एक दूसरा स्तर भी है – ब्रह्माण्ड के अन्दर का ब्रह्माण्ड – जिसे आप नहीं देख सकते, क्योंकि यह पूर्ण अन्धकार से आच्छादित है और आप इसे आलोकित करने में सक्षम नहीं हैं। इस पूर्ण अन्धकार को अज्ञान, अविद्या या माया के नाम से जाना जाता है। इससे आपकी अन्तर्निहित सजगता आच्छादित है, इसे दूर भगाना ही होगा। अचेतन के प्रकाशित होने पर आप महान्, अद्भुत, अति सुन्दर चीजों और दृश्यों को देखते हैं। उस अवस्था तक पहुँचने का माध्यम मन्त्र है जो आपको गुरु से प्राप्त होता है।

चेतना के अधिक गहरे स्तर को जाग्रत एवं प्रकाशित करने के लिए कोई एक ही आध्यात्मिक अभ्यास पर्याप्त है। मैं अन्य अभ्यास भी सिखाता हूँ और उनके महत्त्व को कम नहीं कर रहा हूँ, किन्तु सत्य यह है कि सिर्फ एक मन्त्र ही पर्याप्त है। इस अभ्यास के द्वारा आपका सम्पूर्ण मन और चेतना परिवर्तित हो जाते हैं, वे मन्त्र के एक अंग हो जाते हैं। आपके सम्पूर्ण व्यक्तित्व और अस्तित्व में मन्त्र

व्याप्त हो जाता है, वही मन्त्र जो आपने सौभाग्यवश अपने गुरु से प्राप्त किया है। तब यह आध्यात्मिक अभ्यास आपके समक्ष जीवन का एक पूर्णत: नवीन और विलक्षण आयाम या परिदृश्य प्रस्तुत करता है।

जब शिष्य अपने गुरु से मन्त्र ग्रहण करता है तो वह इसे मानसिक रूप से समझता है। तब वह अपने श्वास में इसका अभ्यास करता है। धीरे-धीरे उसका व्यक्तित्व मन्त्र से अभिभूत हो जाता है तथा उसकी चेतना रूपान्तरित होने लगती है। उसकी पूर्व की छितराई हुई, खण्डित और विघटित चेतना मन्त्र के रूप में संघटित हो जाती है। वह संघटित सार-तत्त्व धीरे-धीरे गहरे अवचेतन में तथा और अधिक गहरे अचेतन में उतरता है, जहाँ यह सर्वोच्च चेतना का द्वार खोलता है।

मन्त्र सिर्फ अक्षर या शब्द नहीं है। मन्त्र वे ध्वनियाँ हैं जो प्रबुद्ध ऋषियों और योगियों द्वारा तब सुनी गईं जब उन्होंने भौतिक स्तरों का अतिक्रमण करके अचेतन का भेदन किया। वहाँ इस पदार्थ जगत् का कोई अस्तित्व नहीं था। प्रारम्भ में उन्होंने कुछ ध्वनियों को सुना जो साधारण मन्त्र बने। किन्तु जब वे और अधिक गहराई में गए तो ये ध्वनियाँ वहाँ नहीं थीं। यहाँ तक कि वे अपने-आप की सजगता भी खो बैठे। तब उनका प्रवेश चेतना की अचेतन अवस्था में हुआ जिसे हम शिवरात्रि कहते हैं। बाइबिल में इसे 'आत्मा की अन्धेरी रात' कहा गया है। अचेतन अवस्था में प्रवेश करने के बाद उन्होंने अन्य शक्तिशाली ध्वनियों को सुना, जिन्हें बीज मन्त्रों के नाम से जाना गया। इस प्रकार मन्त्र उनके समक्ष प्रकाशित हुए जो इस भौतिक अस्तित्व का अतिक्रमण करने में सक्षम हुए। संक्षेप में मन्त्रों का यही स्रोत है। हजारों वर्षों से गुरु द्वारा शिष्य को मन्त्र हस्तांतरित किये जाते रहे हैं। ऐसा मन्त्र सम्पूर्ण व्यक्तित्व का पूर्णतया विस्फोट करके उच्चतर सजगता का द्वार खोल सकता है।

मन्त्र का उपयोग कैसे करें

शिष्य होने के साथ ही आध्यात्मिक जीवन प्रारम्भ होता है। तब गुरु मन्त्र प्रदान करते हैं। अब हम इसके व्यावहारिक पक्ष पर विचार करें। मन्त्र की आवृत्ति बोलकर या मानसिक रूप से कर सकते हैं। इस अभ्यास में प्राय: तुलसी या रुद्राक्ष के दानों की माला का उपयोग किया जाता है, प्रत्येक आवृत्ति के साथ एक दाने को घुमाया जाता है। प्रारम्भिक अभ्यासी मन्त्र की आवृत्ति सामान्यत: माला की सहायता से करते हैं, बाद में वे मन्त्र और अपने हृदय की धड़कन के बीच तादात्म्य स्थापित करते हैं। और अन्त में, मन्त्र के प्रति अपनी सजगता को रीढ़ की हड्डी से जोड़ते हैं।

आप किसी भी मानसिक स्थिति में क्यों न हों, मन्त्र के प्रति आपकी सजगता आपके सामने से ओझल नहीं होनी चाहिए। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि निद्रावस्था या मानसिक चंचलता की स्थिति में भी आप मन्त्र के प्रति सजग बने रहें। मन्त्र के प्रति आपकी सजगता स्थिर, स्थायी और अटूट होनी चाहिए।

असंदिग्ध और सुनिश्चित आध्यात्मिक विकास तभी सम्भव है, अन्यथा नहीं। जब आप मन्त्र-जप का अभ्यास कर रहे होते हैं तो प्राय: आपका मन भटकता है तथा जीवन के विभिन्न आयामों के बारे में सोचता है। इससे आतंकित होने की कोई बात नहीं है, यह खतरनाक या अध्यात्म विरोधी नहीं है। किन्तु जब आप आधे घण्टे या ऐसी ही किसी अवधि के लिए मन्त्र का अभ्यास करने लगते हैं तो कभी-कभी कुछ क्षणों या लगातार कई मिनटों तक अचेत हो जाते हैं। ऐसे क्षणों में आप मन्त्र, अभ्यास या अपने प्रति सजग नहीं रहते। आपका मन दोलायमान नहीं है, किन्तु आप शून्य में हैं। यह शून्यावस्था खतरनाक और अध्यात्म विरोधी है। प्रारम्भ में यह अवधि एक सेकण्ड की होती है, किन्तु बाद में यह एक घण्टे की हो सकती है।

अपने अभ्यास के प्रारम्भ से ही आप इस बात के प्रति अवश्य सतर्क रहें कि आपका मन एक क्षण के लिए भी शून्यावस्था में न रहे। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। ज्ञान या ईश्वर-बोध सजगता है, शून्यता नहीं। सजगता पूर्णता है, शून्यता नहीं। इसलिए अपने को या अपने अस्तित्व को भूलने का प्रयास न करें। अभ्यास की अवधि में ॐ या आपके अपने मन्त्र की सजगता निरन्तर बनी रहनी चाहिए, आप एक क्षण के लिए भी उसे न भूलें। अभ्यास करते समय आप ध्वनि, कम्पन या मन्त्र के स्वरूप पर अपने मन को एकाग्र कर सकते हैं।

मानव शरीर में एक अति सुन्दर और आश्चर्यजनक वस्तु है और वह है मेरुदण्ड। आप उज्जायी प्राणायाम करते हुए अपने श्वास को लम्बा कीजिये। तब खेचरी मुद्रा लगाइये और इस श्वास का अभ्यास अपने मेरुदण्ड में कीजिए। अब अपने मन्त्र के साथ श्वास का तादात्म्य स्थापित कीजिए तथा उन्हें मेरुदण्ड में नीचे-ऊपर मूलाधार से आज्ञाचक्र तक घुमाइये। श्वास की लय के साथ मन्त्र का जप करते हुए आरोहण-अवरोहण करते जाइये। मेरुदण्ड आपका आध्यात्मिक सोपान है। आरोहण-अवरोहण करते जाइये। बाद में आप पायेंगे कि मेरुदण्ड में स्थित विभिन्न आध्यात्मिक केन्द्र स्पष्ट हो गये हैं। ये केन्द्र मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों को नियन्त्रित करते हैं। ये आध्यात्मिक सजगता की सर्वकुंजी हैं। अन्तत: यह मन्त्र आपको सीधे कुण्डलिनी के जागरण तक ले जाता है और आपको अपना स्वामी बना देता है।

— *'गुरु शिष्य सम्बन्ध' से उद्धृत*

गुरु की महिमा

वीणा किराड, पूना

वर्षों पुरानी बात है, शायद सन् 1980 की। स्वामी सत्यानन्द जी पूना आये थे और डेक्कन इलाके के एक होटल में रुके थे। मैंने उनसे सन् 1967 में गोंदिया में दीक्षा ली थी और अपने शहर में उनके आगमन से मैं बहुत उत्साहित थी।

उनसे मिलने का वक्त दोपहर 2 से 3 बजे तक का था। डेक्कन इलाका हमारे घर से काफी दूर है। संयोग से उसी दिन सुबह से साम्प्रदायिक दंगों के कारण शहर में कर्फ्यू लग गया था। मुझे स्वामीजी के दर्शन किसी भी हालत में करने थे। दोपहर को 1 बजे मैं अपने तीनों बच्चों को साथ लेकर निकल पड़ी।

कर्फ्यू लगने के कारण रिक्शा नहीं मिल रहा था। छोटे-छोटे बच्चों के साथ मैं इतनी दूर जा भी नहीं सकती थी। अचानक एक रिक्शेवाला मेरे पास आकर रुका और पूछने लगा, 'बहन जी, आपको कहाँ जाना है?' मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि रिक्शावाला मुसलमान था। बच्चों के साथ रिक्शे में बैठकर मैंने उसे गंतव्य स्थान बताया। मुझे अभी भी याद है कि उस भले इंसान ने किस तरह मुझे छोटी-छोटी गलियों से ले जाकर होटल के सामने पहुँचाया।

उस समय 3 बजने में दस मिनट बाकी थे। मैंने तो श्री स्वामीजी के दर्शन की आशा ही छोड़ दी थी, क्योंकि लाइन में मेरे आगे 9-10 लोग खड़े थे और श्री स्वामीजी समय के बड़े पाबंद थे।

अचानक कमरे का दरवाजा खुला, और एक संन्यासिनी दरवाजे पर खड़ी होकर लाइन में सबका निरीक्षण करने लगीं। मुझपर नजर पड़ते ही उन्होंने मुझे इशारे से बुलाया और अपने साथ मुझे और बच्चों को श्री स्वामीजी के पास ले गईं।

श्री स्वामीजी ने जिस तरह कठिन परिस्थिति में अदृश्य रूप से मेरी मदद कर अपने दर्शन दिए, उस गुरु-कृपा से मेरी आँखों से अविरल अश्रु बहने लगे।

प्रवृत्ति-मार्ग में गुरु का मार्गदर्शन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

जीवन में हम लोग प्रवृत्ति और निवृत्ति के दो मार्गों को देखते हैं। प्रवृत्ति-मार्ग में जीव, इन्द्रियों और संसार के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। यह ऐसा मार्ग है जहाँ भौतिक इन्द्रियाँ और मानसिक वृत्तियाँ इन्द्रिय-विषयों में पूरी तरह लिप्त रहती हैं। ऐसी स्थिति में आंतरिक स्थिरता, संतुलन और सामंजस्य प्राप्त करने के लिए, दिव्यता का साक्षात्कार कर पाने के लिए संयम और अनुशासन का मार्ग निर्दिष्ट किया गया है। संयम वाणी, मन एवं इन्द्रियों का होता है, और अनुशासन मंत्रों, योगाभ्यासों तथा निद्रा एवं आहार में नियमितता से सिद्ध होता है।

दिमाग की सर्जरी

प्रवृत्ति-मार्ग पर गुरु व्यक्ति को किस तरह का मार्गदर्शन देता है? तुम लोग तो पहले से ही प्रवृत्ति-मार्गी जीवन जी रहे हो, तुम्हें उस मार्ग तक ले जाने की आवश्यकता नहीं। लेकिन अपने वातावरण, समाज और प्रकृति से तुम्हारा जो सम्बन्ध है, उसे 'फाइन-ट्यून' करने की आवश्यकता जरूर है।

इसके लिए गुरु को मानसिक स्तर पर काम करना पड़ता है। यहाँ गुरु 'दिमागी-सर्जन' की भूमिका निभाता है। हर व्यक्ति मानसिक स्तर पर कुछ विशेष परिस्थितियों से घिरा हुआ है। चाहे वह संत हो या संसारी, उसे मानसिक विक्षेप, तनाव, चिन्ता, विषाद और निराशा का सामना करना ही पड़ता है। गुरु केवल उसके सोचने का ढंग बदल देता है, ताकि जीवन के प्रति नकारात्मक के बजाय सकारात्मक दृष्टिकोण हो सके। असहाय और निराश होने के बजाय तुम आशावादी बनते हो, तुम्हारे भीतर प्रेरणा और उत्साह जगता है। तुम्हारे मन की फाइन-ट्यूनिंग द्वारा ही गुरु ऐसा कर पाता है।

इस तरह मानसिक स्तर पर गुरु का काम है मन के भ्रमित, संकीर्ण और नकारात्मक विचारों को बदलना। शिष्य के जीवन में पहले वैचारिक परिवर्तन होना है और उसके बाद भाव परिवर्तन। विचारों से हम संसार के विषयों को देखते हैं और उन्हीं के माध्यम से हम परमात्मा तक भी पहुँच सकते हैं। विचार मध्य की स्थिति है, चाहे वह तुम्हें संसार की ओर ले जाए या परमात्मा की ओर। इसलिए गुरु का पहला काम होता है शिष्य के जीवन में वैचारिक परिवर्तन लाना। यह वैचारिक परिवर्तन जीवन के सकारात्मक पक्षों की ओर देखने की प्रक्रिया है। जब तक तुम अपने जीवन के सकारात्मक पक्षों को देखने और उन्हें प्राप्त करने का प्रयास नहीं करोगे, तब तक तुम्हारी मानसिकता में परिवर्तन नहीं आएगा। गुरु ही तुम्हें बतलाता है कि तुम एक अन्य दृष्टिकोण से जगत् को, स्वयं को और परमात्मा को भी देख सकते हो।

शिष्य चाहे गृहस्थ हो या संन्यासी, अगर वह गुरु की इन शिक्षाओं और संदेशों को ग्रहण कर पाता है तो मन की सकारात्मक और रचनात्मक शक्तियाँ अभिव्यक्त होने लगती हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्तित्व की विभिन्न प्रतिभाओं में संतुलन, सामंजस्य और समन्वय होने लगता है। तुम अपने जीवन, परिवार और समाज के प्रति बेहतर दृष्टिकोण अपनाते हो और तुम्हें जीवन में अधिक आनंद और तृप्ति की अनुभूति होती है।

अधिकांश लोग जीवन के इस स्तर तक पहुँचकर संतुष्ट हो जाते हैं और यही उनकी यात्रा का अंतिम पड़ाव हो जाता है। ऐसे लोगों के जीवन में गुरु की आवश्यकता केवल मन और चेतना की फाइन-ट्यूनिंग के लिए थी और यह प्राप्त हो जाने के बाद उन्हें आगे गुरु की जरूरत महसूस नहीं होती।

दिल की सर्जरी

जीवन का अगला स्तर है दिल की सर्जरी का। ऐसे भी कुछ लोग होते हैं जो अपने मन की सीमाओं को लांघकर अपनी आध्यात्मिक प्रकृति का अन्वेषण करना चाहते हैं। ऐसे लोगों के लिए गुरु दिल के सर्जन बनते हैं। गुरु जो भी साधना पद्धति या विधि हमें सिखलाए, जिस भी दिशा में चलने के लिए हमें प्रेरित करे, उसका पहला प्रयोजन है मन-परिवर्तन और जब गुरु के निर्देशों का पालन करते हुए, आध्यात्मिक साधनाओं को करते हुए हमारा मन शांत और स्थिर हो जाता है, तब फिर भावनाओं में परिवर्तन लाना होता है। मन की फाइन-ट्यूनिंग करने के बाद गुरु शिष्य की भावनाओं पर काम शुरू करता है। गुरु वह आधार बनता है जहाँ शिष्य की समस्त भावनाएँ केन्द्रित होने लगती हैं।

मनुष्य की भावनाएँ उसकी प्राण-शक्ति की अभिव्यक्तियाँ मात्र हैं। प्राण-शक्ति सूक्ष्म और अनियंत्रित होती है। उस पर तुम्हारा कोई नियंत्रण नहीं होता, और कई बार वह भावनात्मक विस्फोट के रूप में प्रकट होती है। मन की परिस्थिति अनुसार यह विस्फोट विभिन्न रूप ले सकता है। अगर मन किसी खतरे का सामना कर रहा है तो यह विस्फोट भय और चिंता का होगा। अगर मन में चिड़चिड़ेपन या रोष की भावना है तो विस्फोट क्रोध के रूप में होगा। यह सब तुम्हारे जीवन में हर क्षण जाने-अनजाने हो ही रहा है। तुम जीवन के विभिन्न प्रभावों और परिस्थितियों पर लगातार प्रतिक्रिया कर रहे हो। लेकिन गुरु के सान्निध्य में तुम अपनी भावनात्मक

ऊर्जाओं को एक बिन्दु पर केन्द्रित करने लगते हो। वह बिन्दु आंतरिक होता है; तुम अपनी भावनाओं को बाहरी जगत् से हटाकर आध्यात्मिक आयाम में ले जाते हो।

भावनाओं को भीतरी आयाम की ओर ले जाने की प्रक्रिया भक्ति कहलाती है। भक्ति का अनुभव गुरु के साथ रहकर ही होता है; यही हृदय को खोलने का तरीका है। रामचरितमानस में कहा भी गया है – *प्रथम भगति संतन्ह करि संगा* – भक्ति का प्रथम सोपान साधु-संतों का संग है। सत्पुरुषों के संग से तुम्हारे मन, चेतना और प्राणों का उत्थान होता है। अगर तुम नकारात्मक और आलोचक मनोवृत्ति के लोगों की संगति में रहते हो तो तुम किसी मायने में भक्त नहीं कहला सकते। ऐसी स्थिति में गुरु तुम्हारे दिल की सर्जरी कभी नहीं कर पाएँगे। भक्ति की पहली शर्त्त ही सदाचारी और सत्कर्मी सज्जनों की संगति है। इससे स्पष्ट होता है कि हमारी संगति कितनी महत्त्वपूर्ण होती है। यह हमें गलत मार्ग पर भी ले जा सकती है और सही मार्ग पर भी।

सत्संगति के साथ-साथ विश्वास को भी विकसित करना चाहिए। गुरु के साथ सम्बन्ध श्रद्धा और विश्वास पर आधारित है। भक्ति की पहली शर्त्त अर्थात् सत्पुरुषों की संगति अपनाने से श्रद्धा और विश्वास अपने आप जागृत होने लगते हैं। धीरे-धीरे अपने बारे में अधिक समझ प्राप्त होती है, जीवन की दिशा स्पष्ट होने लगती है और मार्ग के सभी अवरोध हटने लगते हैं। यही दिल की सर्जरी की शुरुआत है।

गुरु से हमें यह शिक्षा मिलती है कि किस प्रकार हम अपने हृदय को व्यापक बनाकर सर्वव्यापी सत्ता से जुड़ सकते हैं। यह अनुभव मात्र बौद्धिक ज्ञान के रूप में नहीं, बल्कि गहन आत्मीय साक्षात्कार के रूप में उदित होता है – *सियाराममय सब जग जानि, करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानि।* सृष्टि के सभी प्राणियों का सार तत्त्व एक ही है। भौतिक शरीर पंचतत्त्वों से निर्मित है, लोग देखने में भिन्न लग सकते हैं पर चाहे वे भारतीय हों या रूसी या चीनी या जापानी, वे जिस मौलिक तत्त्व से बने हैं, वह एक ही है। आध्यात्मिक स्तर पर एकता का साक्षात्कार गुरु के माध्यम से ही होता है। हम सब एक-दूसरे से और साथ ही परम सत्ता से भी जुड़े हैं। जब इस सत्य का प्रत्यक्ष साक्षात्कार हो जाता है तब भावनात्मक स्तर पर एक गहन रूपांतरण होता है। हमारी भावना जो स्वयं तक ही सिमित थी, अब उसमें परिवर्तन होता है और वह भावना 'मैं' तक सीमित न रहकर सभी से जुड़ती है। मनुष्य स्वार्थ की सीमाओं से ऊपर उठता है, स्वार्थ के बंधनों से अपने आप को मुक्त करता है और एक ऐसी मनोस्थिति को प्राप्त करता है जहाँ उसके भीतर कोई कामना शेष नहीं रहती। कामना रहने का मतलब स्वार्थ-वृत्ति का जन्म और कामनाओं के समाप्त होने का मतलब स्वार्थ-वृत्ति का नाश। जैसे ही हमारे जीवन में स्वार्थ-वृत्ति की प्रबलता कम होती है, हमारा हृदय शुद्ध होने लगता है और जीवन के छल-कपट दूर हो जाते हैं। मन निर्मलता को प्राप्त करता है, भावना शुद्धता को प्राप्त करती है और जीवन के प्रति एक व्यापक दृष्टिकोण विकसित होता है।

– *'प्रवृत्ति एवं निवृत्ति' से उद्धृत*

शिष्य की प्रार्थना

संन्यासी दैवतच्च, संन्यास प्रशिक्षार्थी, रायपुर

कहाँ गए हे मेरे गुरुवर, छोड़ शिष्य को भव-अतल-जल में
पुकार रहा है क्लान्त शिष्य, तुमको डूबते भव-भँवर में।
एक बार जब आ गए, तो वापस फिर क्यों गए?
डालकर पीयूष-बिन्दु मुख में, फिर छोड़ गरल में क्यों गए?
हम तुम्हारे शिष्य गुरुवर, कह चले तुम अनुसरण करो
जिधर भी मैं चलता हूँ, उधर ही अनुगमन करो।
किन्तु भव-जल लांघ गए, बस एक पग में, तुम सक्षम
पल में ही ओझल हो गए, रह गए मेरे पद लघु, अक्षम।
मैं कनिष्ठ रोता-बिलखता, तेरे पद-रेणु खोज रहा
कहाँ मिले संसार में, गुरु पदचिह्न यह सोच रहा।
जग श्मशान में कहीं भी पर, तेरा पदचिह्न न पा सका
स्थूल इन्द्रिय चेतना है, दिव्य पद-रज न पा सका।
गुरु! तुम्हारे रूप में ही, मैं गुरुवर को खोज रहा
पर विरले ही पाता 'गुरु' को, मन में सदा यह क्षोभ रहा।
रहते समीप तुम मेरे, पर चेतना में युगों का है अंतराल
आज भी मैं इस पार खड़ा, और तेरा ठौर है उस पार।
भवसागर को पार करूँ, यह न मेरी अभिलाषा है
यह तो अबोध शिष्य की, अपने गुरु की पिपासा है।
इसलिए, हे पिता मेरे, मेरा कुछ न दोष समझना
अतल-विषय-जल, यदि डूब जाऊँ, करुणा करना लघु-पद-शिशु हूँ तेरा।
देखा यदि सामर्थ्य मुझमें, पथ में अनन्त पग धरने का
नहीं मेरा साहस अदम्य यह, है प्रेम गुरु से शिशु-शिष्य का।
कर चुका प्रयाण पथ में तेरे, अपनी प्राकृतिक गति से
डूबता-उतराता जा रहा, कभी गरल में, कभी सुधा में।
अनुसरण करूँ मैं उसी, प्रथम महा-पदचिह्न का
भय नहीं, अवलम्ब न पाऊँ, तेरे द्वितीय पदचिन्ह का।
यदि तेरी स्मृति न मन में, और झलक न अंतर्गगन में
तब तेरी 'विस्मृति' को ही, करूँ समर्पण, संकल्प मन में।
अब मेरा निर्झर प्रवाहित, तेरी ही दिशा की ओर
दसों दिशाओं से पृथक् कहीं, पकड़े गुरु मंत्र की डोर।

दोष क्या इसमें विटप का, भानु यदि मेघ-वसन ओढ़ा,
कर भी क्या सकता विटप, वह किरण प्यासा, पर मेघ रोड़ा।
भानु ही उत्पत्तिकर्ता, मेघ का जो व्योम व्याप्त
रचे समय में ही वृष्टि, मेघ, गगन से होता समाप्त।
मैं हूँ शिष्य विटप सम, तू रवि देदीप्यमान्
चाहे जब तू ध्वंस हो, मेघ-माया का महान्।
विलोक रहा मैं गगन ओर, होगी कब कृपा-मेघवृष्टि
गुरु-भानु आकाश से, डालेंगे सुत-वत्सल दृष्टि।
दोष केवल एक मेरा, जिससे विपदा ने मुझे घेरा
मानता कर्ता स्वयं को, कृत्य है यह जगत् तेरा।
शिष्य का उद्‌गार, हे गुरुवर! तेरी भव-क्रीडा जब पूर्ण हो
थाम मेरे नन्हें करों को, अविलम्ब निज-अंक ले लेना।

कल्पतरु की छाँव में

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

गुरु के लिए जो पूर्ण श्रद्धा का भाव अनुभव होता है वह स्थिर क्यों नहीं रहता? किसी समय विशेष में गुरु के लिये एकनिष्ठ प्रेम का अनुभव होता है, लेकिन फिर वह कहाँ चला जाता है? एक बार ज्ञान हो जाने पर फिर वापिस अज्ञान क्यों हो जाता है?

जब सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है तब उसमें हमेशा संदेह और प्रश्न रहेंगे, पर सम्बन्ध जब हृदय से होता है तब उसमें कोई प्रश्न और संदेह नहीं रहते। इसी को सूफी लोग इश्क मजाजी और इश्क हकीकी कहते हैं। इश्क मजाजी हुआ मस्तिष्क का प्रेम और इश्क हकीकी है दिल का प्रेम। मस्तिष्क का प्रेम बनावटी होता है। हमें कुछ चाहिये, हम जाकर देखते हैं कि यह व्यक्ति हमें क्या दे सकता है। हमें लगता है यह योग सिखा सकता है, सर्टिफिकेट दे सकता है, हम नाम कमा सकते हैं, पैसा कमा सकते हैं। विचारों की यह शृंखला कि हम इससे क्या ले सकते हैं, यह हमें क्या दे सकता है, यह एक प्रकार का सम्बन्ध निश्चित करती है दो व्यक्तियों के बीच, चाहे वे गुरु-चेला हों या पति-पत्नी हों या मित्र हों या दुश्मन हों। दिमाग से यह जो सम्बन्ध स्थापित होता है वह हमेशा किसी इच्छा, वासना या महत्त्वाकांक्षा के कारण होता है, और निन्यानवें प्रतिशत लोग इसी स्तर पर अपना रिश्ता, अपना सम्बन्ध तय करते हैं कि मुझे क्या मिल सकता है।

जब तक इस तरह का भाव और दृष्टिकोण रहेगा, तब तक गुरु और शिष्य के बीच सम्बन्ध कभी स्थिर नहीं हो सकता, भक्त और भगवान के बीच सम्बन्ध स्थिर नहीं हो सकता, यहाँ तक कि मित्रों के बीच भी सम्बन्ध स्थिर नहीं रह सकता। लेकिन जब हम बिना किसी अपेक्षा के एक-दूसरे से मिलते हैं, एक-दूसरे से जुड़ते हैं तो पारस्परिक प्रेम और सहयोग की भावना रहती है। वह भावना दिल से उत्पन्न होती है – मुझे कुछ नहीं चाहिये। इस तरह का अपनापन है तो वह सम्बन्ध ज्यादा स्थायी रहता है और आपको ज्यादा दूर तक ले जाता है।

प्रश्न तो आदमी कुछ भी कर सकता है, लेकिन हमारी क्या अपेक्षा और इच्छा है, हम कैसे गुरु के साथ अपनी तार को जोड़े हैं, इसका भी तो एक बार अवलोकन करना चाहिये। गुरु के साथ सम्बन्ध कैसा होना चाहिये, केवल इतना पूछ लेने से काम नहीं चलता। हमने इच्छायुक्त होकर बुद्धि के माध्यम से गुरु के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ा है या बिना किसी अपेक्षा के नि:स्वार्थ भाव से सम्बन्ध जोड़ा है? एक बार यह निश्चित हो जाए तो आप खुद ही जान लोगे कि आपका रिश्ता क्यों और कैसा है।

– *गंगा दर्शन, 20 अप्रैल 2014*

गुरु-शिष्य सम्बन्ध में गुरु शिष्य को ढूँढ़ते हैं या शिष्य गुरु को? क्या गुरु और शिष्य का सम्बन्ध पहले से होता है और यदि हाँ, तो इसका पता कैसे चलता है?

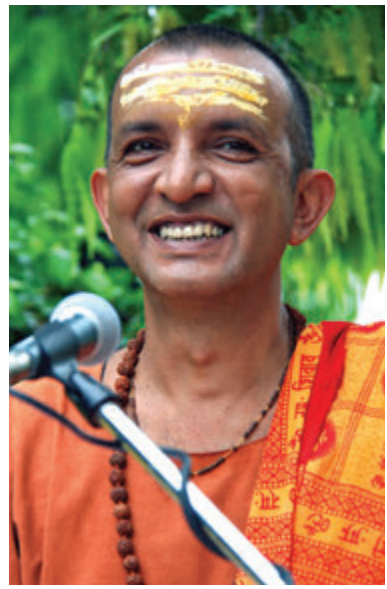

न तो गुरु शिष्य की खोज करते हैं और न शिष्य गुरु की खोज करता है। दोनों आपस में मिलते हैं। यह हुई सामान्य बात। लेकिन अगर गुरु का कोई कार्य है और दैवी प्रेरणा से उस कार्य को आगे बढ़ना है तो गुरु भी एक शिष्य की तलाश में रहते हैं जो उनके कार्य को आगे बढ़ा सके। एक उदाहरण देता हूँ। जब रामकृष्ण परमहंस के पास स्वामी विवेकानंद जी गये थे तो वे श्री रामकृष्ण के पहले शिष्य नहीं थे। उनके तो अनेक शिष्य हो चुके थे। लेकिन जब श्री रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानंद जी को देखा तो उन्हें मालूम पड़ा कि यही वह शिष्य है जिसकी मैं प्रतीक्षा कर रहा था। और विवेकानंद जी को भी मालूम पड़ा कि यही वे गुरु हैं जिनकी मैं तलाश कर रहा था।

इसी प्रकार से हम अपनी परम्परा में भी यही बात देखते हैं। जब हमारे गुरु, स्वामी सत्यानंद जी स्वामी शिवानंद जी के पास गए थे, वे पहले शिष्य तो थे नहीं। उनके पूर्व अनेकों संन्यासी और गृहस्थ शिष्य हो चुके थे। लेकिन जब स्वामी शिवानंद जी हमारे गुरुजी को संन्यास दीक्षा दे रहे थे तब उनके मुख से यह उद्‌गार निकला था कि मुझे मेरा मनोवांछित शिष्य मिल गया है। मतलब जिसकी मैं इच्छा कर रहा था, जैसा मैं चाह रहा था वैसा शिष्य मुझे मिला है। इसका मतलब कि पूर्व लोगों के साथ उनका इस प्रकार का सम्बन्ध नहीं था।

इसलिए हम आपसे यह कह रहे हैं कि जो शिष्य सामान्य श्रेणी में आते हैं, उनके सन्दर्भ में गुरु-शिष्य एक-दूसरे को खोजते नहीं हैं। गुरु उस शिष्य को खोजते हैं जो उनके कार्य को आगे बढ़ा सके। ऐसे शिष्य तो बहुत ही कम होते हैं। अगर कोई गुरु अपने जीवनकाल में ऐसे अनुकूल शिष्य की प्रतीक्षा करे तो उसमें कोई गलत बात है भी नहीं। यह तो आप भी करते हो। चाहते हो कि बेटा हो जाए और जब बेटा नहीं होता है, बेटी होती रहती है तो प्रयास करते रहते हो। उसी प्रकार से गुरु भी एक अच्छे शिष्य के लिए प्रयास करता है, खोज करता है। पर यह बात सबके साथ लागू नहीं होती। यह बात ऐसे विरले लोगों के साथ लागू होती है जिनका गुरु के साथ एक रिश्ता-नाता रहता है, किसी महान् कार्य को करने के लिए। वरना ऐसे ही आश्रम चले गए, सत्संग

में बैठ गए, गुरु से मिल लिए– इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। न आपको गुरु की शिक्षाओं का परवाह रहती है, न गुरु को आपकी परवाह रहती है। सीधी-सी बात है।

– गंगा दर्शन, 11 अगस्त 2013

गुरु परम्परा में उत्तराधिकारी का चयन कैसे होता है?

बहुत कम लोग अपने उत्तराधिकारी का चयन करते हैं। नहीं तो कोई करता नहीं है, क्योंकि उत्तराधिकारी किसी को मिलता ही नहीं है। सब चेले स्वार्थी होते है। सब पद और प्रतिष्ठा के पीछे जाते हैं। इसलिए कोई भी संन्यासी कभी अपने उत्तराधिकारी का चयन नहीं करता है। मर जाते हैं और उसके बाद चेला लोग लड़ते रहते हैं, क्योंकि कोई सक्षम चेला मिलता ही नहीं है। स्वामीजी ने बीस साल पहले चयन किया क्योंकि हम मिल गये। सीधी-सी बात बोल रहा हूँ। अगर हम अपने जीवन को देखें कि हमारा अपने गुरु के साथ क्या सम्बन्ध था तो कुछ बातें हमें समझ में आती हैं। मैं गर्व से नहीं, एक आत्मचिन्तन और विश्लेषण के रूप में ये बातें कह रहा हूँ।

आपको गुरु नानक देव जी की कहानी मालूम है न! गुरु नानक ने अपने अंतिम काल में किसको अपना उत्तराधिकारी बनाया? उसे जो उनका नौकर था। उस बेटे को नहीं, जो सोचता था कि मैं उत्तराधिकारी बनूँगा। जो नौकर था, जो बर्त्तन साफ करता था, जो चूल्हा जलाता था, जो झाड़ू लगाता था, उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया और वे बने गुरु अंगद देव जी। तो अगर गुरु नानक के शिष्यों ने सोचा कि मैं इनका उत्तराधिकारी बनूँगा, यह उनकी गलती थी न!

उत्तराधिकारी में क्या पात्रता होनी चाहिए? जो उत्तराधिकारी होता है उसे पहले गुरुमुखी होना चाहिए। जो गुरुमुखी नहीं है उसे उत्तराधिकारी बनने का अधिकार नहीं है। गुरुमुखी होने का मतलब होता है जो गुरु के संकल्प को अपना संकल्प माने, गुरु के चिन्तन को अपना चिन्तन माने, गुरु की इच्छा को अपनी इच्छा माने। मैं अपने मन से यह बात नहीं कह रहा हूँ, यह हमारी परम्परा में कहा गया है। इसके लिए चेला पहले शिष्य धर्म को सिद्ध करे और उसके बाद संन्यास धर्म को।

अपने बारे में जब हम सोचते हैं तो लगता है कि कैसे गुरुजी ने हमारे जन्म

के पहले कहा था कि यह मेरा उत्तराधिकारी होगा। उनकी दृष्टि जो रही सो रही, लेकिन हमने अपने जीवन में जो देखा है उसे बताते हैं। दस साल की उम्र से हमें आश्रम से बाहर भेज दिया गया। तेईस साल की उम्र में वापस लौटे। जितने साल हम बाहर रहे हमारे मन में कभी भी इच्छा नहीं हुई कि हम गेरू धोती को छोड़ें। बहुत देशों में जाते थे, ईसाई और इस्लामी देशों में जाते थे। लोग कहते थे, स्वामीजी आप धोती पहनकर जायेंगे तो आपको अन्दर कर दिया जायेगा। हम कहते थे, अगर अन्दर करेंगे तो करेंगे, लेकिन हम अपना वस्त्र बदलने वाले नहीं हैं, हम पैंट-कमीज पहनने वाले नहीं हैं। जो वस्त्र हमें अपने गुरुजी ने दिया है, वही हमारे लिए प्रथम और अन्तिम है। सब जगह जाते थे, कहीं तो हमें अन्दर नहीं किया गया। लेकिन अगर हम अपना वस्त्र बदल लिए होते तो वह हमारी अपनी कमजोरी होती, भूल होती और हम संन्यास मार्ग में आगे नहीं बढ़ पाते।

दूसरी बात, आजकल तो मोबाईल और ई-मेल है, पर उस समय तो कुछ नहीं था। बाहर से चिट्ठी यहाँ आने में एक महीने का समय लगता था। उसका जवाब पहुँचने में एक महीना लगता था। कोई प्रश्न पूछते तो दो-तीन महीने बाद उसका जवाब आता था। ऐसी परिस्थिति में हम क्या करते थे? हम चिन्तन करते थे कि इस परिस्थिति में हमारे गुरु क्या निर्णय लेंगे। हम क्या निर्णय लेंगे, नहीं; हमारे गुरु क्या निर्णय लेंगे। ऐसा सोचकर फिर हम उस प्रकार का काम करते थे। नहीं तो हम स्वतंत्र थे, अपनी मनमर्जी कर सकते थे, आराम की जिन्दगी बिता सकते थे, ऐश कर सकते थे, वस्त्र बदल सकते थे, नौकरी कर सकते थे, प्रोफेसर बन सकते थे, कुछ भी कर सकते थे, लेकिन हमने अपने मन को पटरी पर रखा। सम्भवत: गुरुजी ने यही देखना चाहा कि इसे इतनी सारी वस्तुओं के बीच भेजकर भी इसका मन स्थिर रहता है या विचलित होता है। नहीं तो हमारे समकालीन बहुत-से अन्य संन्यासी भी थे जो गुरुजी के साथ चौबीस घण्टे रहते थे। हम नहीं रहते थे। हम तो बाहर रहते थे। लेकिन उनको उत्तराधिकारी नहीं बनाया गया।

आप लोग सोचते होंगे कि मेरा भी कोई उत्तराधिकारी है। मैं स्पष्ट कर रहा हूँ कि मेरा उत्तराधिकारी कोई नहीं है। किसी में वह प्रतिभा ही नहीं कि गुरुमुखी बने। हो सकता है बाद में किसी में वह प्रतिभा आ जाए। जिसमें वह प्रतिभा होगी, वह मेरा उत्तराधिकारी बनेगा। संन्यास भावना पर नहीं चलता है, संन्यास एक आदर्श पर चलता है। संन्यास में एक आदर्श की स्थापना के लिए प्रयास किया जाता है, और उसके लिए पहले शिष्यत्व और संन्यास को सिद्ध करना जरूरी है। तब जाकर गुरु सोच सकता है कि कोई व्यक्ति उपयुक्त है अथवा नहीं।

उपयुक्त व्यक्ति कोई भी हो सकता है। वह एक गृहस्थ भी हो सकता है अगर उसमें वह क्षमता है। यह कोई जरूरी नहीं कि संन्यासी ही उत्तराधिकारी हो। जिस व्यक्ति में त्याग, शिष्यत्व, संन्यास, साधना और समर्पण की भावनाएँ ज्वालामुखी की तरह जल

रही हों, वह उपयुक्त हो सकता है। बात आई न समझ में! इसलिए पहले शिष्यत्व, फिर संन्यास और उसके बाद में सोचना बंद, क्योंकि आपके सोचने से उत्तराधिकार नहीं मिलता है। वह तो गुरु का अपना दृष्टिकोण होता है कि यह चेला कैसा है, वह कैसा है, उत्तम कौन है इस ग्रुप में। यह भी कोई जरूरी नहीं कि जो प्रेसिडेन्ट के साथ हमेशा रहता है वही उसका उत्तराधिकारी भी बने। प्रेसिडेन्ट के साथ उसका जूता साफ करने वाला बटलर हमेशा रहता है, लेकिन बटलर उत्तराधिकारी नहीं बनता है। उत्तराधिकारी कोई अनजान व्यक्ति बनता है। जिसको कोई नहीं जानता है वह उत्तराधिकारी बनता है क्योंकि उसमें वह क्षमता होती है, वह साधना होती है, वह संकल्प होता है, वह शक्ति होती है। इसलिए संन्यास में उत्तराधिकार की जो परम्परा है वह निर्भर करती है व्यक्ति विशेष पर, और अगर हम अपने इतिहास को देखें तो निश्चित रूप से मालूम पड़ता है कि जो सोचता है कि मैं उत्तराधिकारी हूँ, वह कभी नहीं होता है।

– गंगा दर्शन, 9 जून 2013

मैं प्राय: आश्चर्य करता हूँ कि मुझे स्वामी शिवानन्द जी ने क्यों चुना। मैं सोचता हूँ कि इसका सिर्फ एक कारण हो सकता है – मैं जब तक उनके सान्निध्य में रहा, एक भी क्षण ऐसा नहीं था जब उनके साथ मेरा पूर्ण तादात्म्य न रहा हो। मैं सर्वदा उत्साहपूर्वक उनका अनुकरण करता था। मैं उनके प्रत्येक शब्द तथा अभिव्यक्ति पर ध्यान देता था। मैं उनके जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप का अवलोकन करता था। उनका साधारण-से-साधारण कार्य भी मेरे लिये शिक्षा का अवसर था। अनेक बार मैं बिल्कुल ठीक-ठीक जान जाता था कि वे क्या सोच रहे हैं। कुछ अन्य अवसरों पर मैं यह बतला सकता था कि वे क्या करने जा रहे हैं। गुरु के क्रियाशील होने के पूर्व ही शिष्य को उनके विचारों को समझ लेना चाहिये। गुरु और शिष्य के बीच इस प्रकार का एकत्व स्थापित होना ही चाहिये। ऐसा होने पर उनकी कृपा स्वत: प्रवाहित होने लगती है।

–स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

मेरे प्राणाधार

स्वामी आत्माभिषेक सरस्वती

पृष्ठ 148, ISBN: 978-93-81620-57-1

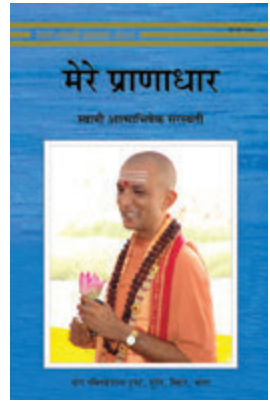

स्वर्ण जयन्ती प्रकाशन

अवतारी पुरुष इस धरा पर आते और साधारण मनुष्यों की तरह रहते हैं, हम उन्हें जान नहीं पाते। किन्तु उनके सौन्दर्य का स्पन्दन प्रत्येक हृदय को झंकृत कर देता है। 'मेरे प्राणाधार' में स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के जीवन की झलकियाँ हैं, जिन्होंने अपने गुरु के आवाहन पर बाल्यावस्था से ही गुरु के चरणों की शरण लेकर अपना सम्पूर्ण जीवन मानवता के हितार्थ समर्पित कर दिया। अध्यात्म के शिखर पर विराजित लेखक के लीलाधर की इन चपलताओं में आपको उनकी बालसुलभ कोमलता, सरलता, विनोदशीलता और करुणा के दर्शन होंगे, जो अनायास ही अपने सम्पर्क में आने वाले सभी लोगों का मन मोह लेते हैं।

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603, 09304799615 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

सत्यानन्द योग वेबसाइट

www.biharyoga.net

यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, शिवानन्द मठ, सीता कल्याणम् महोत्सव तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट सम्बन्धी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

www.rikhiapeeth.in

यह वेबसाइट सभी साधकों के लिए स्वामी शिवानन्द जी की 'सेवा, प्रेम और दान' की मौलिक शिक्षाओं से जुड़े रहने का सुगम साधन है। यहाँ रिखियापीठ की गतिविधियों, कार्यक्रमों और सत्रों की जानकारी के अतिरिक्त प्रेरक सत्संग भी उपलब्ध हैं।

'यौगिक जीवन' स्वामी निरंजन के संग

www.biharyoga.net/living-yoga/ पर श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारी स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के मिशन सम्बन्धी लेख, संदेश एवं समाचार उपलब्ध हैं।

www.yogamag.net

योगा पत्रिका के लेखों के संग्रह तथा पूरे विश्व में सत्यानन्द योग केन्द्रों और शिक्षकों के सम्पर्क सूत्रों और गतिविधियों की जानकारी के लिए इस वेबसाइट को देखें।

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/13-15
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

bar code

गंगादर्शन के सत्र एवं कार्यक्रम 2014

अगस्त 2014 - मई 2015	योग अध्ययन में डिप्लोमा (अँग्रेजी)
अगस्त 1-30	योग अनुदेशक सत्र (अँग्रेजी)
सितम्बर 8	स्वामी शिवानन्द जन्मोत्सव
सितम्बर 12	स्वामी सत्यानन्द संन्यास दिवस
अक्टूबर 1 - जनवरी 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (अँग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस

प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक माह के 5 वें और 6 वें दिवस	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक माह के 12 वें दिवस	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार 811201

फोन : 06344-222430, 06344-228603, 9304799615 फैक्स : 06344-220169

वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।